कौल-कल्पतरु

चण्डी

ॐ ह्रीं

ॐ ह्रीं

*वर्ष ५२ *अंक ६

परा- वाणी

इस गति - मय विश्व में प्रत्येक उन्नत देश, जाति, धर्म तथा समाज के दो अंग हैं - १ धार्मिक, २ सामाजिक । देश, जाति अथवा समाज की उन्नति के लिए इन दो अंगों को 'रोग'- रहित बनाना परम आवश्यक है ।

गहरी निद्रा के पश्चात् आज हमारा समाज पुनः जागृत हो उठा है, परन्तु बहु - काल आहार न मिलने से निर्बल एवं क्षीण है ।

अतः आवश्यकता है 'समाज'- संगठन की । संगठन कर 'नव'- जीवन का संचार करो । फिर, अपने प्राचीन नियमों को ढूँढ कर, नव- ज्योति से उन्हें सु- पुष्ट बनाते हुए समाज में उन्हें प्रचलित करो और निज समाज को विश्व - सूर्य बना दो ।

गुप्तावतार बाबाश्री

* आविर्भाव :
श्रावण कृष्ण १३, सं० १९४१

* तिरोभाव :
कार्तिक शुक्ल ८, सं० २०१०

इस अंक में - * 'मन्त्र- तन्त्र- यन्त्र' की भ्रामक प्रस्तुति, * माँ पूरण देवी (जागृत शक्ति पीठ), * निद्रा और शिथिलीकरण, * शत्रु- विनाशक आदित्य- हृदय, * श्री खड्ग- रावण मन्त्र- विधि, * नारायणास्त्र, श्रीमहा- काल- कवचम् ।

माँ पूरण देवी (जागृत शक्ति- पीठ, देखें पृ० २६७)

पं० कमलाकान्त मिश्र

'कौल- मार्तण्ड' पं० कमलाकान्त मिश्र जी गुरु- परम्परा के विभूति- सम्पन्न साधक थे। अपने पूरे जीवन को उन्होंने साधना में लगा दिया और इस पवित्र कार्य में जुट गए कि **'मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है। इस जीवन को मनुष्य सफल करे। वह चेते और इस लोक के साथ- साथ उस लोक को भी सुख- मय बनाने का प्रयत्न करे।'**

वे बार- बार शिष्यों से कहते —**'सा चातुरी चातुरी, जे उभय- हित लोक- साधन- कारी'** अर्थात् वही चतुरता- चतुरता है, जिससे इस लोक के साथ ही पर- लोक का भी सुख प्राप्त हो।

* * *

तन्त्राचार्य वैद्य पं० चिरौंजीलाल जी का सम्मान

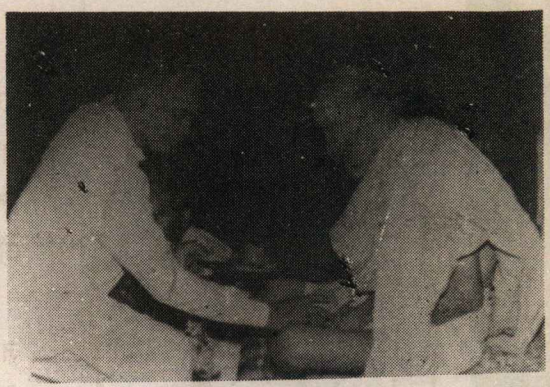

श्री १०८ श्री अंगददास जी का सम्मान

श्रीमती कोकिला बेन पटेल का सम्मान

वर्ष ५२] [अङ्क ९
मार्गशीर्ष, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० दिसम्बर, १९९३

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज–२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज-२११००६

जय गणपति गिरिजा-नन्दना।
एक-दन्त गज - दन्त विनायक,
शङ्कर-सुत - पद वन्दना–जय०।
जो सेवत पादारविन्द तव,
सिद्धि-सदन शिव-नन्दना–जय०।
पावत रिद्धि - महा - निधि सुख जग,
छूटत भव - भय-बन्धना–जय०॥

—गुप्तावतार बाबाश्री

इस अंक में

० मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र की भ्रामक प्रस्तुति २५८
० एक 'प्रेरणा'-दायक पत्र २६०
० 'प्रेम' और 'स्नेह' का मिलन २६१
० श्रीभैरवी २६३
० सिद्ध शक्ति-पीठ रज-रप्पा २६५
० माँ पूरण देवी : जागृति शक्ति-पीठ २६७
० निद्रा और शिथिलीकरण २७४
० उपदेश २७६
० साधन-माला २७७-२८५
१३५ शत्रु-विनाशक आदित्य-हृदय
१३६ श्रीखड्ग-रावण मन्त्र-विधि
१३७ नारायणास्त्र
१३८ श्रीकाली-ताण्डवोक्त धूम्र-पान विधि
१३९ श्रीमहा-काल-कवचम्
० जिज्ञासु के पत्र २८६
० धार्मिक जगत् की हलचल २८८

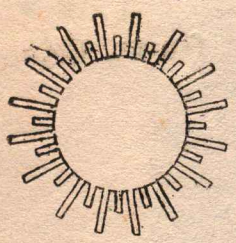

मन्त्र-विद्या की जन्म-भूमि 'भारत में 'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र' की भ्रामक प्रस्तुति

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

उक्त सन्दर्भ में पिछले अङ्कों में दिल्ली की साहित्यिक मासिक पत्रिका **'कादम्बिनी'** एवं **जोधपुर** (राजस्थान) की मासिक पत्रिका **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-विज्ञान'** की आलोचना प्रकाशित हो चुकी है। सर्व-साधन-सम्पन्न इन जैसी व्यावसायिक पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य धन कमाना है। इसके लिए वे पर्याप्त धन व्यय कर बढ़िया कागज पर आकर्षक रङ्गीन छपाई कर उक्त विषयक अपने मनोहर विशेषाङ्क निकालती हैं। इससे लाखों पाठकों का ध्यान भारत की इन रहस्य-मयी कल्याणकारी विद्याओं के प्रति आकर्षित हुआ है। इसके लिए इन पत्रिकाओं के प्रकाशक, सम्पादक, लेखक आदि सभी प्रशंसनीय हैं।

क्या ही अच्छा होता कि वे अपने इन विशेषाङ्कों में इन विद्याओं का जो विवरण प्रकाशित करते हैं, वे भ्रामक न होकर प्रामाणिक होते, तो उन्हें सबकी बधाइयाँ भी प्राप्त होतीं, किन्तु ऐसा न करके वे अशुद्ध और अधूरे मन्त्र प्रकाशित करते हैं। यदि अनजान पाठक उनका प्रयोग कर हानि उठाएँ, तो इसके पाप से क्या वे बच सकेंगे ? कदापि नहीं। उनमें से प्रत्येक को अपनी भागीदारी के अनुपात में 'दैवी दण्ड' भोगना ही पड़ेगा। 'लोकापवाद' से वे अलग पीड़ित होंगे। उन्हें यह चेतावनी देना हमारा कर्तव्य है। ऐसा करने में उनके प्रति हमारी हित-भावना ही है।

अक्टूबर, ९३ में श्री **नारायणदत्त श्रीमाली** (गुरु-देव) द्वारा पुनः **'महा-लक्ष्मी विशेषाङ्क'** सज-धज के साथ प्रकाशित किया गया है। प्रथम पृष्ठ पर 'नियम' के अन्तर्गत उन्होंने घोषित किया है कि—"...**पत्रिका में प्रकाशित किसी भी साधना में सफलता - असफलता, हानि - लाभ आदि की जिम्मेदारी साधक की स्वयं होगी तथा साधक कोई ऐसी उपासना न करे, जो नैतिक, सामाजिक या कानूनी नियमों के विपरीत हो। ...गुरु - देव या पत्रिका - परिवार किसी प्रकार की जिम्मेदारी वहन नहीं करेंगे।...**"

किन्तु इस घोषणा पर कितने पाठकों का ध्यान जायगा ? फिर मुख-पृष्ठ पर ही आपने लिख रखा है—**सौ टंच खरे महा-लक्ष्मी के सिद्ध प्रयोग !** यह तो वैसा ही हुआ, जैसे कोई **'शाह से कहे जागो और चोर से कहे चोरी करो !'** मजे की बात यह है कि पूरे विशेषाङ्क में **'महा - लक्ष्मी'** के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक विवरण नहीं दिया है। पृष्ठ ६ पर **'सौ टंच खरे लक्ष्मी के सफल प्रयोग'** शीर्षक छपा है ! **'महा-लक्ष्मी'** के स्थान पर केवल **'लक्ष्मी'** ! क्यों ? पता नहीं !

पहले प्रयोग का शीर्षक है—**श्री यन्त्र** ! लिखते हैं—**'श्री यन्त्र तो लक्ष्मी का आधार - भूत यन्त्र है।'** धन्य हैं ! गुरु - देव को यह भी पता नहीं कि **'श्री यन्त्र'** दश महा - विद्याओं के अन्तर्गत **'षोडशी'** महा-विद्या के द्वितीय एवं तृतीय रूपों—**पञ्च-दशी** (श्रीललिता, श्रीविद्या, त्रिपुर - सुन्दरी) और **षोडशी** (महा-त्रिपुर-सुन्दरी) का प्रख्यात पूजन-यन्त्र है !!

पूरा विशेषाङ्क रोचक किन्तु मन-गढ़न्त विज्ञापनों से भरा है। पृष्ठ ३७ पर **'गुरु-देव'** के चित्र सहित **'शक्ति-पात-युक्त पाँच दीक्षाएँ'** विज्ञापित हैं—१. **महा-लक्ष्मी दीक्षा**, २. **कुण्डलिनी-जागरण दीक्षा**, ३. **ऋण-मोचन दीक्षा**, ४. **रोग-निवृत्ति दीक्षा**, ५. **सम्पूर्ण सम्मोहन दीक्षा**। इन दीक्षाओं के नाम कदाचित् ही किसी प्रामाणिक तन्त्र - मन्त्र - ग्रन्थ में मिलेंगे ! **'आँख के अन्धे, गाँठ के पूरे'** जो पाठक इन दीक्षाओं के चक्कर में पड़ेंगे, उनकी रक्षा कैसे होगी, यह कौन बता सकता है क्योंकि 'गुरु - देव किसी प्रकार की जिम्मेवारी वहन नहीं करेंगे'—इसकी घोषणा प्रथम पृष्ठ में स्पष्ट रूप से छपी ही है !!

विशेषाङ्क में प्रकाशित मन्त्रों के विधि-विधान के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना व्यर्थ है। जिस **'सम्पादक-मण्डल'** को **श्रीगणेश** के १२ प्रसिद्ध नाम तक शुद्ध छापने की समझ नहीं है, उससे क्या आशा की जाय ? पृष्ठ ४२ पर 'गजाकर्णक' नहीं, **'गज-कर्णकः'**, 'विनायक' नहीं, **'विनायकः'**, 'गजाननं' नहीं, **'गजाननः'** छपना चाहिए था। इसी प्रकार पृष्ठ ४३ पर निम्न मन्त्र पढ़कर हँसी आ जाती है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो व (?) सर्वास्थां (?) गतोऽपि वा, यः स्मरेत (?) पुण्डरीकाक्षं सः बाह्याभ्यारतं (?) शुचिः।

उक्त सामान्य मन्त्र में भी चार अशुद्धियाँ ! इसी से सिद्ध है कि पत्रिका में प्रकाशित विषय कितने अशुद्ध एवं भ्रामक हैं। यदि सभी को लिखा जाए, तो **'चण्डी'** का एक पूरा अङ्क इसी पर निकालना पड़े। फिर गुरु-देव श्रीमाली जी के विषय में क्या लिखें ! उन्हीं के एक 'भक्त' को उनके कार्यालय से प्राप्त पत्र की प्रतिलिपि यहाँ उद्धृत है, जिससे स्पष्ट है कि **मनोहर चमक - दमकवाली भ्रामक पत्रिकाओं और उनके लुभावने विज्ञापनों से मन्त्र-विद्या की पुण्य - भूमि 'भारत' देश के कितने ही भोले-भाले लोग किस प्रकार ठगे जा रहे हैं—**

मन्त्र शक्ति केन्द्र

प्रधान कार्यालय : डा० श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कालोनी, जोधपुर—३४२००१ (राज०)

प्रिय बन्धु, दिनाङ्क २७ जुलाई, ९१

शुभाशीर्वाद। आपका पत्र मिला। आपने व्यक्तिगत मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहा है, पूज्य गुरु-देव ने आपको आशीर्वाद प्रदान किया है।

आपके पत्र के सन्दर्भ में उचित रहेगा कि आप पूज्य गुरु-देव से हमारे नई दिल्ली केन्द्र में ऋण-मुक्ति दीक्षा प्राप्त करें। इस दीक्षा का पूजन व्यय ५१००-०० रु० है, दीक्षा संस्कार के लिए गुरु चादर १५०/- रुपए की आवश्यकता होती है, अपने उपयोग के लिए एक पीली धोती साथ लाएं। जाने के पूर्व टेलीफोन कर पूज्य गुरु-देव का नई दिल्ली का कार्य-क्रम अवश्य जान लें।

आपको जब भी मार्ग दर्शन की आवश्यकता हो आप निःसङ्कोच पत्र-व्यवहार कर मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। हमें मार्ग दर्शन देने में प्रसन्नता ही होगी। धन्यवाद।

आपका शुभाकांक्षी (शर्मा)

उक्त पत्र में पूरा हस्ताक्षर नहीं है, केवल **'शर्मा'** लिखा है ! कितनी बड़ी विडम्बना है कि ऋण से मुक्ति पाने के लिए जो **'दीक्षा'** लेनी है, उसके लिए **'ऋणी व्यक्ति'** को ५२५० रुपए तो नगद **'गुरु-देव'** को ही देने होंगे ! ऊपर से दिल्ली जाने - आने का, वहाँ ठहरने का भारी व्यय सहना !! अर्थात् **'ऋण-भार'** उसे और बढ़ाना होगा, तब **'ऋण-मुक्ति दीक्षा'** मिलेगी ! उस 'दीक्षा' से कुछ लाभ होगा या

(शेष पृष्ठ २६० पर)

मलूक-बानी

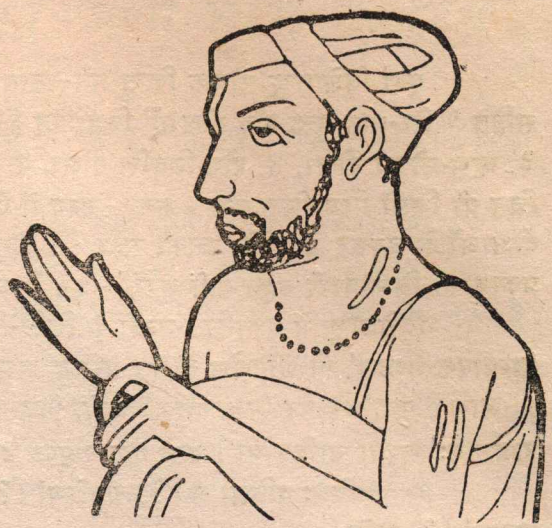

ध्यान धारि गुरु-रूप को, काया कीजै भेंट ।
छूटि जाय भय काल को, बाढ़ै हरि सों हेत ।।
प्रेम ग्यान जब होय दृढ़, रहै न भ्रम को लेस ।
तब 'मलूक' संसै बिना, क्या देइ गुरु उपदेश ।।
लघु दीरघ नहिं आतमा, सब में यों दरसाइ ।
नभ में घट–घट माँहि नभ, घट मठ होइ न जाइ ।।
जब जीवै निज मान तजि, धरै रूप निज ध्यान ।
प्रेम-भगति-रस ऊपजै, सुनि अनहद-धुनि कान ।।
यह 'मलूक' निरनै कियो, सकल शास्त्र-मत-सार ।
भव-सागर के तरन को, नामै है आधार ।।
रहौं भरोसे राम के, बनिजहिं कबहुँ न जाउँ ।
'दास मलूका' यों कहै, हरि बिरवै मैं खाउँ ।।
कह 'मलूक' जब तें लई, राम-नाम की ओट ।
सोवत हौं सुख नींद भरि, डारि भरम की मोट ।।
नमो नमो पुनि-पुनि नमो, नमो पुरुष भगवान् ।
अर्घ नाम जाके तरे, जल ऊपर पाषान ।।

(पृष्ठ २५९ का शेष)

नहु , इसका भी कुछ भरोसा नहीं क्योंकि उसका कोई दायित्व गुरु-देव या उनके कार्यालय पर नहीं है। **सारी जिम्मेदारी** शिष्य की ही है ! आध्यात्मिक क्षेत्र में होनेवाले इस अन्धेर के प्रति किसी का ध्यान नहीं है ! धन्य है यह देश !!

सत्यं-शिवं-सुन्दरम् :

'प्रेम' और 'स्नेह' का मिलन

पं० कपिलनारायण मिश्र, पथार (गड़हनी), भोजपुर (बिहार)–८०२२०३

'प्रेम' बिना शर्त्त, विशुद्ध मर्यादित कामना एवं 'प्रेम' और **स्नेह** का मिलन अर्थात् ब्रह्म और सत्य का मिलन वासना की इच्छा से युक्त 'समर्पण' चाहता है। **'स्नेह'** में 'समर्पण' की भावना 'ममत्व' के कारण होती है। निरन्तर 'स्नेह' - दृष्टि पड़ते रहने के कारण (परोक्ष - अपरोक्ष रूप से) प्रेमी के मन में 'प्रेम' की भावना का अंकुरण होता है, जो उत्तरोत्तर तीव्र होता जाता है। परिणामतः दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति आदर एवं सम्मान का भाव आ जाता है, जिसकी अन्तिम परिणति बिना शर्त्त समर्पित हो **'एकाकार'** हो जाना है। **'प्रेम'**, **'स्नेह'** के साथ मिल—एकाकार हो, अपना अस्तित्व खो देता है किन्तु **'स्नेह'** अपना अस्तित्व सदा बनाए रखता है। **'स्नेह'**, 'ममत्व'-परक होने के कारण स्त्रियोचित (प्राकृतिक, मातृत्व-गुण-युक्त) गुण है। 'प्रेम', पुरुष-प्रधान होकर, पुरुषोचित पुरुष-प्रधान गुण है। **'स्नेह'**, अथाह सागर है, जिसमें 'प्रेम' - रूपी सभी नद-नदियाँ मिलकर, अपना अस्तित्व खोकर एक - रूप हो जाते हैं। **'प्रेम'**, **'स्नेह'** में समाहित हो जाता है। **'प्रेम'** और **'स्नेह'** के एकाकार-समर्पण के कारण ही दोनों के अन्दर एक साथ **"एकोऽहं बहु स्याम"** की इच्छा उत्पन्न होती है। स्नेह के वशीभूत त्रि-देवों को बाल-रूप बन पालने में झूलने के लिए बाध्य होना पड़ा था। 'अपनत्व' एवं 'समादर' की भावना **'प्रेम'** और 'स्नेह' दोनों में सन्निहित रहती है। **'स्नेह'** में ममत्व की मात्रा की अधिकता के कारण 'अपनत्व' का भाव **'प्रेम'** की अपेक्षा अधिक होता है।

'स्नेह' जहाँ निर्मल, शीत-ताप-रहित शुद्ध प्रकाश, रूप-रङ्ग-युक्त सत्य-रूप है, वहीं **'प्रेम'** उष्ण-प्रधान होते हुए रङ्ग-हीन किन्तु शुद्ध रङ्ग-युक्त 'ब्रह्म'-स्वरूप है। 'स्नेह' प्रकाश-दाता 'सत्य' है और **'प्रेम'** तेज - प्रदाता 'ब्रह्म'। प्रकाश 'सत्य' का और तेज 'ब्रह्म' का अंश है। सूर्य दिन में प्रकाशवान् होकर 'सत्य' है और रात्रि में तेजवान होकर 'ब्रह्म'। **प्रेम एवं स्नेह का मिलन ही सत्यं-शिवं-सुन्दरम्** है। **'प्रेम'** मर्यादित 'ब्रह्म' और **'स्नेह'** निर्मल प्रकाश-रूप 'ब्रह्म की परमा-शक्ति' है। जब-जब भी **'प्रेम'** अमर्यादित और **'स्नेह'** अनियन्त्रित हुआ है, तब-तब तत्त्व-मन्थन (आकाशीय जलीय) तेजी से आरम्भ हो, दोष-वासना कामना-रागादि के विकृत-रूपों को प्रकट कर 'भोग'-वादी ('भोग'-प्रधान) बना देता है, जिससे विश्व (सृष्टि) में अशान्ति, अभाव, अनेकता, अराजकता, दरिद्रता, कलह में वृद्धि हो जाती है।

'प्रेम' आनन्द-दायक होते हुए भी पूर्ण तृप्ति और शान्ति नहीं देता। **'स्नेह'** पूण आनन्द-रूप होकर 'प्रेम' से युक्त तृप्ति, आनन्द एवं शान्ति तीनों देता है। **'प्रेम'** सीमा-युक्त और 'स्नेह' अनन्त है। दोनों मिलकर, एक निश्चित दूरी एवं घेरे में रहते हुए, समर्पणावस्था में अदृश्य, अज्ञेय, अनन्त हो जाते हैं। 'स्नेही' और 'प्रेमी' दोनों एक दूसरे में समाहित होकर, एक दूसरे को पूर्ण अनन्य भाव से समर्पित होकर अन्धे एवं पागल सदृश हो जाते हैं। जहाँ **'प्रेम'** दिव्य सङ्गीत है, वहीं **'स्नेह'** दिव्यानन्द-दायक लय, स्वर एवं ताल है। **'प्रेम'** ही **'स्नेह'** के माध्यम से भोग द्वारा लय में पहुँचाता है, तम से प्रकाश की ओर ले जाता है। **तमसो मा ज्योतिर्गमय**—यह प्रेम की इच्छा प्रेमी की इच्छा होती है।

'स्नेह' स्वतः प्रकाश, प्रकाशक एवं प्रकाश - दाता है। **'स्नेह'** के बिना **'प्रेम'** प्रकाश नहीं कर सकता और न ही ज्ञान-बोध करा **'ऋते ज्ञानान् मुक्ति'** की भाव-स्थिति दे सकता। **'स्नेह'** में प्रसारण-क्षमता - युक्त जीवनी - शक्ति है और **'प्रेम'** में आकुञ्चन जीवनी - शक्ति—वापस खींचने की शक्ति सन्निहित है। **'स्नेह'** उदय सूर्य, **'प्रेम'** अस्त सूर्य है। **'स्नेह'** उदय-सूर्य प्रत्यक्ष प्रकाश-पुञ्ज 'सत्य' और **'प्रेम'** अस्त-सूर्य (अस्त-कालीन सूर्य) अदृश्य 'ब्रह्म'-तेज है। **'स्नेह'** ही **सञ्जीवनी-विद्या-प्रदायिका सत्य-रूपा महा-सरस्वती** है, जो कर्मेन्द्रियों को बराबर-बराबर मात्रा में सूर्य - किरणों से परिपूर्ण कर उनमें एकता स्थापित करती है और वाणी' में 'ओज प्रवाह' तथा प्रभाव उत्पन्न करती है। 'प्रेम' **अमृत-विद्या-प्रदायिका शारदा** है, जो ज्ञानेन्द्रियों को चन्द्र - किरणों की बराबर-बराबर मात्रा से सबल बना, उसमें एकता स्थापित कर मनन एवं चिन्तन की सही दिशा देती है। तब प्रेम-शारदा स्नेह-सरस्वती में विलीन हो जाती है। फिर सभी एक रूप हो दसों इन्द्रियों को सबल किरणों से परिपूर्ण कर तत्त्वों तथा तीनों कोषों को शुद्ध बना ऊर्ध्व-रेता बनने में सहायिका होती हैं। इन दोनों की एक-रूपता से ही परिवर्तन करनेवाली शक्ति आती है, जो जीव को ऊर्ध्व-गति देकर लक्ष्य तक पहुँचा देती है। स्नेह (महा-सरस्वती) प्रेम (शारदा) को समर्पित होकर अपना अस्तित्व अलग बनाए रखती है।

स्नेह में सेवा-भाव रहता है और प्रेम में स्नेहाभिभूत भक्ति के कारण दास-भाव (बोध) आ जाता है। सेवा, निष्काम और स्नेहाभिभूत भक्ति-युक्त दास-भाव सकाम है। स्नेह निराकार, प्रेम साकार है। दोनों का एक दूसरे के प्रति 'समर्पण' ही **भावातीत अवस्था** है, जिसमें अहं का अन्त हो **त्राण दिला शान्ति-महासागर में लय करा देता** है। इसी **भावातीतावस्था** से ही अनन्त तत्त्वों की सृष्टि-स्थिति एवं संहार होता रहता है। दोनों समर्पणावस्था में रहते हुए भी अपने आपमें अपने - अपने ढङ्ग से अलग-अलग पूर्ण होकर तृप्ति, आनन्द एवं शान्ति के सह-भागी बनते हैं। कहा गया है कि जब-जब **'स्नेह'** अदृश्य हुआ, तब-तब शिव को ध्यान-योग से **स्नेह'** को आकर्षित करना पड़ा। इसी तरह जब-जब **'प्रेम'** अदृश्य हुआ, तब-तब **'स्नेह'** को भी प्रकाश-तरङ्ग से **'प्रेम'** का आकर्षण करना पड़ा है। इसी की परिणति शिव-पार्वती सम्वाद-रूप में निगमागमों की रचना प्रकाश में आई।

पाठकों के पत्र

' इसी वर्ष से **'चण्डी'** पत्रिका का सदस्य बना। पढ़ने पर ऐसा लगा, जैसे घोर अन्धकार में भटकते लोगों के लिए दीपक ही नहीं, साक्षात् भुवन - भास्कर है। **'कादम्बिनी'** एवं **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-विज्ञान'** की जो आलोचना छपी है, वह कड़ुवी तो है, लेकिन सत्य है। हमारे जैसे बहुत से लोग इसी चकाचौंध में भटक रहे हैं, कुछ पाने की लालसा में।

आज अधिकांश मानव किसी-न-किसी रूप में दुःखी हैं। समस्याओं का अम्बार है और सभी राहत पाने के लिए मन्त्र-तन्त्र को एक-मात्र सहारा मानकर तान्त्रिक-मान्त्रिकों की शरण में पहुँचते रहते हैं और पैसा बहाते रहते हैं। अन्त में मृग-तृष्णा साबित होने पर इसे ढोंग मानने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ऐसे लोगों को **'चण्डी'** पत्रिका से निश्चित ही सही मार्ग मिलेगा। ऐसा मेरा विश्वास कह रहा है।

—**डा० गिरधर शर्मा**, गायत्री कुटीर, जांजगीर (म. प्र.)—४९५६६८

श्रीभैरवी

श्री बलराम दुबे, ७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

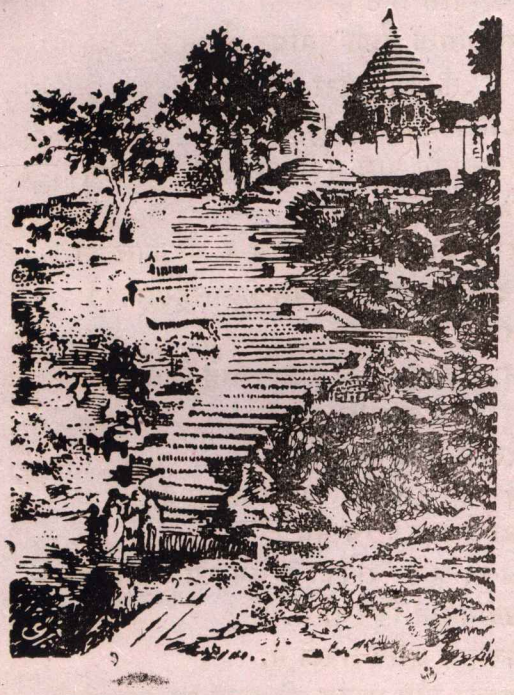

चाहे जिसने बिताई वहाँ रात तेरे चरणों में,
जहाँ शिव-मय समाहित दामोदर के वक्ष पर,
गिरती है भैरवी उफनती हुई—
मुखर स्व-नाम-धन्य नादों की वादी में।
मिलेगी अवश्य उसे भीख अनुकम्पा की,
सम्पत्ति साम्राज्य-सिद्ध दैवी सान्निध्य भी ।।
उस नद और नदी के सिद्ध-पीठ सङ्गम पर,
दामोदर-वक्ष से निकलकर पकड़ता हूँ—
ऊपर से गिरती हुई भैरवी की डोर को ।।
वह पतली-सी रज्जु भी अदृश्या सहारा हो—
शून्य की यात्रा में पञ्च सिद्ध-विद्या का ।।
यात्रा जो हुई थी प्रारम्भ—
नदी भैरवी के लङ्घन से—
छिन्न-मस्ता के दर्शन से !
पर्वतों की दुर्गम ऊँचाइयों को,
बीहड़ों की अतल गहराइयों को मापते हुए—
पाँवों के छालों के आँसू सुखाते हुए,
सूखी हुई छाती में जलजले दबाते हुए,
दर्द अकथनीय बैठ काल के तराजू में
स्वयं ही बोलकर कीमतें चुकाते हुए।
कीमत भी किसकी ? कोरे ख्यालों की ?
चन्द कल्पनाओं की ?
खुली हथेली में आँसुओं के दाग भी तो नहीं,
जो ध्यान के टूटने पर दिखें तो सही !
पर कुछ ज्योतिर्लिङ्गों एवं सिद्ध—
शक्ति-पीठों के दर्शन के बाद,
आभास तेरा मिलता है, भैरवी !
नर्मदा के वक्ष पर उतरते रवि-रथ से,
लिखते हुए धार में अक्षर ॐकार-मय !
दिखाते हुए खोलकर नर्मदा की छाती को—
नाम-रूप अक्षर-मय ।।
आभास तेरा मिलता है भैरवी !
मैहर के तुङ्ग शृङ्ग-प्राङ्गण में,
जहाँ खड़ी हो पूर्व-मुखी—
प्रकट सिद्ध-विद्या की प्रथम आधार-शिला !
शारदा !
आभास तेरा मिलता है,
विजय-सोपानों पर चढ़ते हुए !
जर्जर शरीर भार तेरा क्या ढो सके ?
पूछे तो कोई, इस पर्वत की टूटती शिलाओं से
कि आल्हा के बाद कोई हुआ है समर्थ,
जो कन्धों पर भैरवी की पालकी उठा सके ?
तेरे चरणों से चिपके हुए—
रज की तलाश में !
बैठे हैं साधक अनन्त-कोटि-जन्मों से—

कि कणिका कभी हाथ तो लगे,
जो लगी उस देवी के पावन प्रसाद को !
हृदय से लगाए—
करता हूँ तेरा आवाहन मैहरेश्वरी !!

ध्यान—धारण किए हाथों में वर-अभय मुद्रा,
विद्या जप-वटी लिए—
बैठी हो साधकों, सु-भक्तों की—
भैरवी आनन्द-मयी···
उगते हुए सूर्य की साक्षी में—
देखा है दीप्त मुख-मण्डल को !
प्रकट विहँसते हुए—
कर्पूरी आरती की थाल में थिरकते हुए !
हजारों सूर्य की आभा में—
दमकता हुआ रूप !
असीम तेज-वन्त ज्योतिर्पुञ्ज—
तुझे सूर्य की रश्मियों से जोड़ता है,
अटूट !
जो रहकर भी अदृश्य, द्वादश—
ज्योतिर्लिङ्गों की तरह,
भरते हैं साधकों की आँखों में !
प्रकट विमल ज्योति—
अनुभूति दिव्य-ज्योतिर्मयी !
तेरी किरणों के रथ में है—
तेज सप्त अश्वों का !
सूर्य की ऊर्जा ही रज्जु लगाम की ।।
तुम्हीं पिलाती हो हवि प्राण-अग्नि को—
सप्त-जिह्वाओं से तेज !
सिद्ध-साधकों में शक्ति परशुराम की ।।
तुम्हीं हो ऊर्जा सप्त-अश्वों की—
शक्ति सप्त-भैरवों की ।।
सोम की सोलह कलाओं से आवृत—
हेमकूट हेमाङ्गी—भैरवी आनन्द-मयी !
सिञ्चित हों ताप तीन अमिय कलश—
करुणा के पुष्ट पयोधरों से—
कि प्यास मिटे सृष्टि की !
रक्त सिक्त उन्नत पयोधर बताते हैं—
कि रक्त तुझे प्यारा है !
क्योंकि बहती हो तू ही माँ !
रक्त-मयी, प्राण-मयी काल-मुखी सृष्टि में ।।
नित्य प्रलय-रूपिणी !
हरती हो प्राणों को, काल के भी काल को !
दिनों और रातों के पल-छिन हिसाब का
घटित घटाव हो ।।
लाल तो होगा ही रक्त—चाहे जिसका हो,
सुरथ या समाधि का—
दैत्य रक्त-बीज का !
तेरा ही रक्त सब रगों में बहता है,
जो जलता है चिन्मय !
अलग-अलग दीपकों में सम-रस प्रकाशवान—
उदीयमान किरणों में,
ज्वलित अग्नि-लपटों में,
अदृश्य सोम-मण्डल की अमृत-कलाओं में ।
घटती नहीं है ऊर्जा, जिस तरह सूर्य की—
तुम पूर्ण हो, घटकर निरन्तर भी !
विघटित-प्रति-विघटित होती रहती हो—
प्रस्तुत स्वयं ही उगकर रूपों में सज-धजकर !
तुम्हीं वह सूत्र हो, जो त्रिगुण को जोड़ता है—
रज्जु, जो बाँधती त्रि-देवों को ।
तुम्हीं तो बैठी हो, पुरी के रथ पर—
भाइयों के मध्य, सुभद्रा की तरह ।।

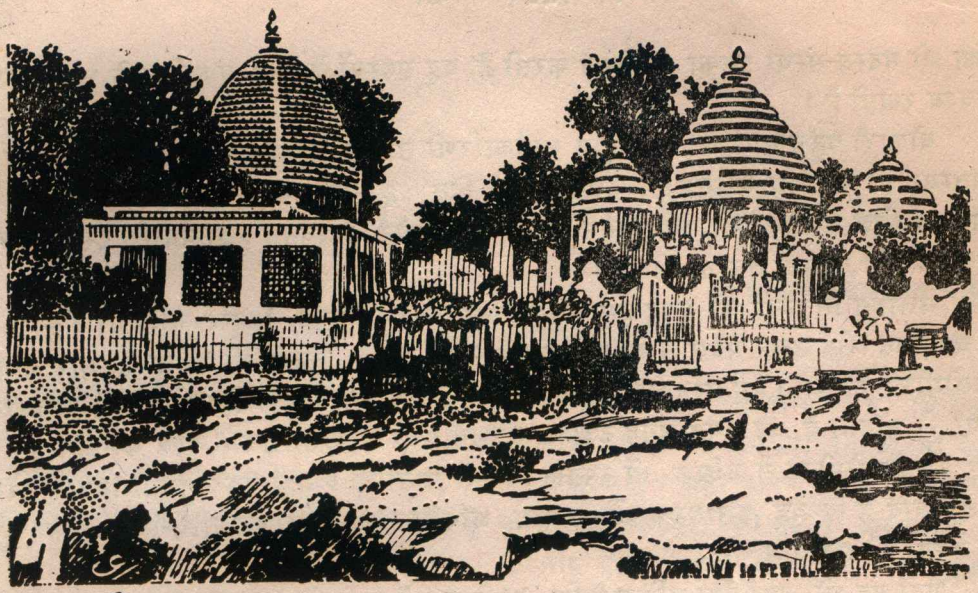

सिद्ध शक्ति-पीठ रज-रप्पा

पं. शिवकुमार दुबे, ३५/३ जवाहरलाल नेहरू मार्ग, प्रयागराज (उ. प्र.) २११००२

नैसर्गिक तीर्थ-स्थल रज-रप्पा

'रज-रप्पा' एक मनोरम ही नहीं, बल्कि नैसर्गिक तीर्थ-स्थल है। **'रज-रप्पा'** वह पवित्र स्थान है, जहाँ भगवती **छिन्न-मस्तिका** का सिद्ध-पीठ है। **छिन्न-मस्तिका** भगवती आद्य-शक्ति की दश महा-विद्याओं में छठवीं विद्या हैं। भगवती **छिन्न-मस्तिका** की स्थापना केवल उसी स्थान पर हो सकती है, जहाँ नदी और नद का सङ्गम हो। भारतवर्ष में मात्र **'रज-रप्पा'** ही ऐसा विलक्षण स्थान है, जहाँ **दामोदर नद** पर **भैरवी नदी** आरूढ़ होती है। यह स्थान है **बिहार** प्रदेश के **हजारीबाग** जिले में। यह इस्पात-नगर **बोकारो** से लगभग ७० किलोमीटर और **पटना-राँची** मार्ग पर **रामगढ़** कैण्ट से ४५ किलो-मीटर की दूरी पर है।

सन् १९७७ से ही भगवती **छिन्न-मस्तिका** के सम्बन्ध में एक विवरण पढ़ने पर माँ के दर्शन की इच्छा मेरे मन में पलती रही। लगभग १० वर्ष पूर्व एक बार **राँची** जाने का सुयोग मिला था, किन्तु माँ के दर्शन की लालसा मन ही में रह गई और **रज-रप्पा** नहीं जा सका। इस बार माँ की विल-क्षण कृपा के फल-स्वरूप विना किसी पूर्व-सूचना या योजना के भगवती का दर्शन गत २७ सितम्बर, १९९३ को सुलभ हो गया। भगवती इसी तरह सभी भक्तों की मनो-कामना पूर्ण करती रहें—यह मेरी भगवती से हृदय से प्रार्थना है।

'बिहार जर्नलिस्ट्स एसोसियेशन' ने 'नेशनल यूनियन आफ जर्नलिस्ट्स (इण्डिया)' की 'राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति' की बैठक बोकारो में गत २५, २६ एवं २७ सितम्बर को आयोजित की थी। राष्ट्रीय उपाध्यक्ष होने के कारण मुझे भी निमन्त्रण मिला था। मैं सपत्नीक वहाँ २६ सितम्बर को पहुँचा। 'राष्ट्रीय कार्यकारिणी' की बैठकें देश के बिभिन्न भागों में समय-समय पर होती रहती हैं और

प्रदेश की जो सदस्य-संस्था इसका आयोजन करती है, वह सदस्यों के लिए एक दिन के भ्रमण का कार्य-क्रम अवश्य रखती है।

बोकारो पहुँचने पर जो 'राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति' के लिए कार्य-क्रम बना था, उसमें २७ सितम्बर को **माँ छिन्न-मस्तिका** के दर्शन का पूरे दिन का कार्य-क्रम वहीं पर प्रसाद-भोजन के साथ था। मैंने **माँ छिन्न-मस्तिका** को मन-ही-मन प्रणाम किया और श्रद्धावनत हुआ क्योंकि इस सुयोग की—इस यात्रा की मैंने कल्पना तक न की थी।

सत्ताइस सितम्बर की सुबह हम सभी सदस्य, जिनमें दिल्ली, बिहार, पश्चिमी बङ्गाल, हरियाणा, चण्डीगढ़ और उत्तर प्रदेश से थे, एक बस में सवार हुए। बिहार की 'लालू'-सरकार की कृपा से ७० किलोमीटर की यात्रा हम पाँच घण्टे में कर पाए! कारण यह था कि **बोकारो** से, जो राजकीय मार्ग **रज-रप्पा** को जोड़ता है, वह जगह-जगह टूटा था। उसमें गड्ढे नहीं, तालाब के दृश्य थे! बस १० किलोमीटर से २० किलोमीटर से अधिक की रफ्तार नहीं ले पाती थी। यहाँ यह अनुरोध बिहार सरकार से करना अनिवार्य है कि वह इस सड़क की मरम्मत अविलम्ब कराकर इस तीर्थ-स्थल तक पहुँचने में श्रद्धालु जनता की सहायता करे।

यहाँ यह भी बता देना उचित है कि **माँ छिन्न-मस्तिका** का दर्शन सभी धर्मावलम्बी करते हैं और माँ का दरबार सभी जाति, वर्ण, रङ्ग के लोगों के लिए समान रूप से खुला रहता है। यह सामुदायिक सौहार्द और प्रेम का प्रतीक है। 'लालू' - सरकार को इस सर्व-ग्राह्य और सर्व-सुलभ स्थान तक पहुँच-मार्गों का अविलम्ब सुधार करना चाहिए।

जब हम सभी **दामोदर नद** और **भैरवी नदी** के सङ्गम-स्थल पर पहुँचे, तो वहाँ की प्राकृतिक छटा ने हमें सम्मोहित कर लिया। मानस - पटल पर और हृदय - पटल पर उस सङ्गम का दृश्य जो अङ्कित हुआ, वह आज भी सजीव है और आगे भी सजीव रहेगा।

शिव-शक्ति का सामञ्जस्य और 'रज-रप्पा'

दामोदर नद शिव का प्रतीक है। **भैरवी नदी** शक्ति है। शिव-शक्ति का सामञ्जस्य यहाँ अहर्निश है। अन्तर है इस सामञ्जस्य में यह कि यहाँ भगवती **'विपरीत रति-आतुरा'** हैं। भगवती को **'विपरीत-रतातुरा'** भी कहते हैं। **भैरवी नदी** का इठलाते हुए आना और **दामोदर नद** पर इसका विलास भगवती **छिन्न - मस्ता** की उन्मुक्तता और उनकी स्वतन्त्र सत्ता के सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र होने की पूर्ण अभिव्यक्ति है। **बलि** और **होम** की प्रिय भगवती **छिन्न - मस्ता** अपने भक्तों का कष्ट-निवारण करती हैं और उन्हें अभय बनाकर उनकी भुक्ति और मुक्ति का द्वार प्रशस्त करती हैं।

सभी शत्रुओं का नाश करनेवाली भगवती का स्वरूप भयङ्कर है। अपने ही खड्ग से अपना सिर उतार कर एक हाथ में लिए हुए भगवती के धड़ से रक्त की तीन धाराएँ निकलती हैं। एक रक्त-धारा भगवती के हाथ में स्थित उनके अपने ही मुख में जाती है और शेष दो उनकी ही अनुचरियाँ पान करती हैं। यह भगवती **अन्न-पूर्णा** जैसी हैं, जो स्वयं अपने को भी पालने में स्वतन्त्र हैं तथा औरों को भी पाल रही हैं। माँ अपने लिए किसी अन्य पर आश्रित नहीं हैं।

भगवती का विग्रह शिव के शरीर पर है। इस प्रकार **भैरवी नदी** का **दामोदर नद** पर आरूढ़ होना स्वयं-सिद्ध है। **माँ छिन्न-मस्ता** सभी का कल्याण करें, यही प्रार्थना है।

पूर्णिया (बिहार) में—

माँ पूरण देवी : जागृत शक्ति पीठ

प्रोफेसर कैलाशनाथ तिवारी

'पूर्ण देवी' अर्थात् 'पूरण देवी'

सांस्कृतिक दृष्टि से 'बिहार' का 'पूर्णिया' जनपद अविभाजित 'बङ्गाल' और 'मिथिला' का **सन्धि-स्थल** रहा है। इन दोनों भू - खण्डों में सदियों से शक्ति - पूजा की प्रधानता रही है, जो आज भी व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हो चुकने पर भी अक्षुण्ण है। यही कारण है कि पूर्णिया-क्षेत्र में देवी-देवताओं के जितने प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं, उनमें देवी-मन्दिरों की संख्या अनुमानतः अधिक है। विशिष्ट देवी - स्थानों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित, पूजनीय और जाग्रत् प्रतिमा है—**माँ पूरण देवी** की। इनकी कृपा से अश्रु-पूरित नयनों में हँसी का उजास फैलते देर नहीं लगती। चाहिए केवल अखण्ड विश्वास, असीम श्रद्धा और अटूट समर्पण-भाव। माँ सबकी मनोकामना पूर्ण करती हैं। इसी से ये **'पूरण देवी'** नाम से प्रसिद्ध हैं। इस नाम की एक और महिमा है। शास्त्रों में महा - विद्या के जो दस रूप—काली, तारा, षोडशी आदि वर्णित हैं, वे सभी इस प्रतिमा में उत्कीर्ण हैं। अतः इनका नाम **'पूर्ण देवी'** अथवा **'पूरण देवी'** पड़ा। पूरे भारत में इस प्रकार की विलक्षण प्रतिमा कदाचित् अन्यत्र नहीं है।

पूरण देवी के आविर्भाव की कथा

पूर्णिया मुख्यालय से प्रायः सात किलोमीटर पूर्वोत्तर पूर्णिया नगर में स्थित **पूरण देवी** के आविर्भाव की कथा सुदूर अतीत के कुहरे में आच्छन्न है। कहते हैं, **पूरण देवी** की शिलाकार मूर्ति पृथ्वी के गर्भ में दबी पड़ी थी। मुगलों का शासन था। शौकत जङ्ग नवाब थे। मन्दिर से तीन - चार किलो-मीटर उत्तर **नवाबबारी** ग्राम में उनका जीर्ण-शीर्ण किला आज भी मुगल-कालीन वैभव एवं क्रूरता की कहानी सुना रहा है। जहाँ मूर्ति दबी हुई थी, उसके पास ही सिद्ध-योगी **हठीनाथ** तपस्या-रत थे। देवी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए और कहा कि 'पोखर के नीचे से मेरी प्रतिमा निकालकर प्रतिष्ठित करो।' फलतः मन्दिर के पीछे वर्तमान पोखर से विग्रह को निकाला तथा अधिष्ठित किया गया। मन्दिर के दक्षिण भाग में अवस्थित **पञ्चमुखी शिव** पर जल चढ़ाकर हठी बाबा **पूरण देवी** की आराधना करते थे। यहाँ कभी नागा साधुओं का प्रसिद्ध अखाड़ा था, किन्तु अब सूनसान है।

उन दिनों यहाँ से कुछ दूर पश्चिम में **सौरा** (कोशी नदी की शाखा) की धारा बहती थी। अब सूख-सी गई है, पर परिरेखा मिटी नहीं है। **हठी बाबा** नित्य वहीं स्नान कर पञ्च - धातु से निर्मित लँगोटा पहनते थे, जिसे अग्नि - कुण्ड में तपाकर लाल किया जाता था। एक दिन वे नदी के किनारे दातुन कर रहे थे। तभी नवाब का पिलवान (महावत) आया और अपने हाथी को वहीं नहलाना चाहा, जहाँ **हठीनाथ** नित्य स्नान करते थे। बाबा ने हाथी दूसरी जगह ले जाने को कहा, लेकिन उसने न केवल उनके आदेश की अनसुनी कर दी, बल्कि उन पर हाथी हुलका दिया। फिर तो बाबा आवेश में

आ गए और हाथों के दोनों दाँत उखाड़ दिए। क्षण - मात्र में वह परलोक सिधार गया। पिलवान भी नौ-दो ग्यारह हो गया और नवाब को सारी घटना कह सुनाई। सुनते ही वह आग-बबूला हो गया और उसने प्रतिशोध लेने के लिए हुक्म दिया कि फकीर के पास फौरन जायकेदार पकवान भेजा जाय।

बाबा उस समय पूजा पर बैठे थे। पूजा समाप्त होते ही उनके सामने कपड़े से ढँकी एक टोकरी रखी गई, पर कपड़ा हटाते ही संवाहक यह देखकर विस्मित हो गया कि पकवान के स्थान पर केवल उड़हुल के फूल थे! **बाबा हठीनाथ** तपोबल से जान चुके थे कि टोकरी में अभक्ष्य पदार्थ हैं। उन्होंने हँसते हुए कहा कि 'मेरी ओर से भी कुछ सन्देश लेते जाओ।' इतना कहते ही वे सारे फूल लड्डू में बदल गए। नवाब को बड़ी ग्लानि हुई कि उसने अभक्ष्य वस्तु भेजकर एक पहुँचे हुए सन्त का अपमान किया है। अतः वे अपनी बेगम और कुछ सिपाहियों के साथ क्षमा-याचना हेतु बाबा की कुटिया पहुँचे। हठीनाथ ने अविलम्ब उन्हें क्षमा कर दिया। नवाब ने उन्हें कुछ धन देना चाहा, पर साधु को धन की क्या चाह! फिर भी नवाब ने एक ताम्र - पत्र पर दस हजार रुपए की जमीन्दारी अर्पित कर दी। इस धन से मन्दिर की व्यवस्था सुदृढ़ हो गई। बाबा भविष्य की चिन्ता से मुक्त हो गए। एक दिन उन्होंने प्रमुख शिष्य **नखीनाथ** को बुलाया और कहा कि 'मेरी समाधि का समय आ गया है। आज से तुम मन्दिर को देख-भाल करना।' इतना कहकर **पूरण देवी** के अधिष्ठाता ब्रह्म-लीन हो गए।

उत्तराञ्चल का पावन तीर्थ-स्थल : 'पूरण देवी'

बाबा हठीनाथ का जञ्जीर - युक्त लँगोटा, शङ्ख, आसन इत्यादि मन्दिर के दक्षिण - पश्चिम भाग में आज भी दर्शनीय हैं। हाथी के जो दाँत उन्होंने उखाड़े थे, उनसे निर्मित सिंहासन भी विद्यमान है। सबसे आश्चर्य-जनक बात यह है कि रात्रि में **शिवा-बलि** के समय एक जोड़ा सियार नित्य आते हैं और बलि को ग्रहण कर लौट जाते हैं! इसी से मिलती - जुलती कथा है **मद्रास** (तमिलनाडु) के **वेदगिरीश्वर के मन्दिर** की। वहाँ दो दिव्य पक्षी काशी में गङ्गा-स्नान कर वेदगिरि पर्वत पर प्रति - दिन बारह बजे **पोंगल** (मीठा पुलाव) ग्रहण करने आते हैं और **चिदम्बरम्** में विश्राम करते हैं। सचमुच कितना रहस्य-मय है आध्यात्मिक-जगत् और कितनी साम्यता है इन विस्मयकारी घटनाओं में!

हठी बाबा के बाद मन्दिर की व्यवस्था क्रमशः ढोली पड़ने लगी। समुचित देख-रेख के अभाव में नवाब शौकत जङ्ग द्वारा प्रदत्त ताम्र-पत्र लुप्त हो गया। बँगला-देशी घुसपैठियों तथा स्थानीय लोगों ने मन्दिर की जमीन हड़प ली! मन्दिर भी क्षति-ग्रस्त होने लगा है। दक्षिणी परिसर तो अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है। मन्दिर तक जानेवाली सड़क टूट-फूट चुकी है। पिछले दशक से जिला प्रशासन तथा **कौल भक्तों** का इस ओर ध्यान गया है और **'पूरण देवी ट्रस्ट'** के तत्त्वावधान में भवन-मरम्मत, सौन्दर्यीकरण तथा अन्य विकास-कार्यों की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। भारतीय स्टेट बैङ्क की **गुलाबबाग शाखा** ने स्तुत्य निर्माण-कार्य किया है। तथापि इस **शक्ति-पीठ** को रम्य बनाने हेतु अभी बहुत कुछ करना शेष है। दूर-दूर से आनेवाले श्रद्धालुओं के ठहरने या साधना-रत होने के लिए न तो कोई भवन है और न कोई वैकल्पिक व्यवस्था! जन-सहयोग की नितान्त आवश्यकता है। प्राकृतिक सुषमाओं से मण्डित तथा जन-कोलाहल से दूर उत्तराञ्चल का यह पावन तीर्थ-स्थल तभी शक्ति - आराधकों का महान् आकर्षण-केन्द्र बन सकेगा।

नवरतन, मुहल्ला-भट्ठा • **पूर्णिया–८५४३०१ (बिहार)**

पं० कमलाकान्त मिश्र के जीवन-आलोक में

• डा० रमेशचन्द्र वर्मा, पचंगछिया, सहरसा (बिहार)

शक्ति-उपासना और मिथिला के गृहस्थ

मिथिला में दीर्घ काल से शक्ति-उपासना का प्रचलन है। मैथिल-ब्राह्मणों, मैथिल कायस्थों एवं कतिपय क्षत्रिय-परिवारों में कुल-देवी की प्रतिष्ठा की जाती है और वह पवित्र स्थान होता है, जहाँ सभी प्रकार की माङ्गलिक क्रियाओं का सम्पादन होता है। उसी परम्परा में सभी गृहस्थ परिवारों में अपने कुल-गुरुओं से ही दीक्षा लेने की परम्परा है। यों इन दिनों कुल-परम्परा के अनुसार कुल-गुरुओं से दीक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में परिवर्तन हो गया है। सिद्ध-गुरुओं का उपलब्ध होना भी दुर्लभ-सा हो गया है, किन्तु पूज्य गुरुदेव **'कौल-मार्तण्ड'** पण्डित कमलाकान्त मिश्र जी गुरु-परम्परा के विभूति-सम्पन्न साधक थे। अपने पूरे जीवन को उन्होंने साधना में लगा दिया और इस पवित्र कार्य में वे जुट गए कि **'मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है। इस जीवन को मनुष्य सफल करे। वह चेते और इस लोक के साथ-साथ उस लोक को भी सुख-मय बनाने का प्रयत्न करे।'** गुरुदेव जी बार-बार शिष्यों से कहते—**'सा चातुरी चातुरी, जे उभय-हित लोक-साधन-कारी,'** अर्थात् वही चतुरता—चतुरता है, जिससे इस लोक के साथ ही पर-लोक का भी सुख प्राप्त हो।

घर के वे उतने धनी तो नहीं थे, लेकिन गरीब भी नहीं थे। करीब २५ बीघे जमीन के जोतदार वे थे। दरवाजे पर गाय, बैल आदि हैं, लेकिन जब से उन्होंने **'अध्यात्म-पथ'** के यात्री के रूप में अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया, तो वे शिष्यों के बीच ही जाते रहते। गोरा शरीर, माथे पर पाग, ललाट पर श्मशान-भस्म का त्रिपुण्ड और रक्त-चन्दन का ठोप, गर्दन, बाँह एवं वक्ष पर भस्म का लेप। कड़ाके की सर्दी में भी शरीर पर एक - मात्र 'मिर्जय' (पुराने ढङ्ग का कुर्त्ता) और एक रेशमी चादर! एक हाथ में लाल रङ्ग का झोला और दूसरे हाथ में छड़ी एवं छाता। झोले में बहुत अल्प सामान, पूजा की सामग्रीवाली एक थैली, स्वाध्याय के लिए शाक्त-साहित्य में **'चण्डी'** या **'कल्याण'** और एक लोटा और 'पतरा' या पञ्चाङ्ग। और कुछ नहीं।

शिष्यों के यहाँ आते और अधिक-से-अधिक दो सन्ध्याओं भर निवास करते और पुनः चल देते। शिष्यों को वे अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाते और उसी वृत्तान्त के साथ अपने उपदेश भी देते।

परिवारों में पहुँचकर वे किसी प्रकार के भेद नहीं रखते। कभी भी किसी को यह नहीं फरमाते कि हमें अमुक चीज चाहिए या अमुक चीज नहीं चाहिए। उनके आने पर शिष्य प्रसन्न हो उठते। कुछ शिष्य और उनका परिवार तो इतना आनन्दातिरेक से भर जाता कि मानो उन्हें कोई दिव्य वस्तु प्राप्त हो गई हो। बच्चे जैसे ही देखते कि गुरु महाराज आ रहे हैं, अपनी माँ से आनन्दोल्लास से आपूर्ण होते

हुए कहते—**'माँ, महाराज जी अएस खुन्ह अधि।'** परिवार के सारे लोग तत्क्षण उनके सामने आ उपस्थित होते। कोई भी शिष्य, किसी भी आपत्ति में पड़ गया हो, उनका स्मरण करता, तो पहुँच जाते। उनके आते ही शिष्य बुक फाड़कर रोने लगता, आँखों से दहो-बहो नीर ढरकने लगते—'गुरुदेव! यह कष्ट है!' सारी बातों को सुनकर वे यही कहते—**'माँ का स्मरण कीजिए। सब ठीक हो जायगा।'**

उनकी इष्ट-देवी थीं **'तारा'** और उन्होंने **'तारा'** का पञ्चाक्षरी मन्त्र धारण किया था। उनके परिवार में भी सभी को **'तारा'** का पञ्चाक्षरी मन्त्र ही दिया जाता है। इसका कारण यह है कि उनका सिद्ध वंश रहा है और अत्यन्त प्राचीन काल में भगवती 'तारा' ने उपस्थित होकर उनके वृद्ध प्रपितामह **पण्डित लाल जी मिश्र** को विभूति से सम्पन्न किया था। **ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्**—मन्त्र प्राप्त कर उनके वृद्ध प्रपितामह ने अनेक प्रकार की विभूतियों का प्राकट्य किया था। कहा जाता है कि उस समय के एक वैष्णव साधक **'मानध्यानदास'** ने अपनी **'सिद्धता'** प्रदर्शित कर 'वैष्णव साधन' के महत्त्व का प्रचार करना चाहा था, तो उसी के उत्तर में उन्होंने अपनी विभूति का प्रदर्शन किया था। **'मनध्यानदास'** रात के समय उनके घर पर एक भीतही दीवाल पर बैठकर पहुँच गए थे, तो दूसरे दिन **'पण्डित लाल मिश्र'** बाघ पर बैठकर उनके यहाँ पहुँच गए। **'मनध्यानदास'** ने उनकी पूजा की योजना में **'पञ्च-मकार'** की समस्त सामग्री प्रस्तुत की, तो उन्होंने **'छप्पन भोग और छत्तीसो'** व्यञ्जन का सम्भार उनके यहाँ लगा दिया। अन्ततोगत्वा दोनों में यह तय हुआ कि **'भई, तुम भी बड़े, तुम भी बड़े। बाबा-बाबा सब कोई कहै, मैया कहै न कोय। बाबा के दरबार में, मैया करै सो होय।'**

'सिद्धि' के प्रदर्शन के प्रति पूज्य गुरुदेव का आदेश

पूज्य गुरुदेव स्वयं इस पक्ष के थे कि 'सिद्धि' का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे भगवती को अपार कष्ट होता है और मन्त्र-साधक की मन्त्र-सिद्धि में कमी आती है। एक बार, सम्भवतः १९६७-६८ में, मेरे पड़ोस में एक बच्चा बीमार पड़ा और वह मृत-प्राय हो गया। उसकी साँस रुक गई। पूरे परिवार में दुःख छा गया। वृद्धा माता मेरे पास दौड़ी हुई आई और मुझसे कहा, 'बच्चा, आप ही उसके प्राण बचा सकते हैं।'

मैंने तुलसीदास के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीतावली' में पढ़ रखा था कि भगवान् राम जब जोर-जोर रोने लगते थे, तो गुरु-प्रवर वशिष्ठ जी को बुलाया जाता था और वे **'नृसिंह मन्त्र'** से बच्चे को झाड़ देते थे। भगवान् राम ठीक हो जाते थे। मैंने 'गीतावली' पुस्तक ली और वहाँ गया। 'गीतावली' के बाल-काण्ड के १२ वें गीत—**'आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके'** की इस पंक्ति—**'सुनत आइ ऋषि कुस लई नरसिंह मन्त्र पढ़े, जै सुमिरत भय भीके'** के नीचे दी गई टिप्पणी देखी—

ॐ नमो नृसिंहाय हिरण्यकशिपु - वक्षस्थल - विदारणाय त्रिभुवन - व्यापकाय भूत-प्रेत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी-कीलनोन्मूलनाय स्तम्भो भव समस्त-दोषान् हन हन, सर सर, चल चल, कम्प कम्प, मथ मथ, हुँ फट्, हुँ फट्। ठँ ठं महा-रुद्र जापित स्वाहा।'

उक्त मन्त्र से उस बच्चे को एकादश बार झाड़ा। बच्चे के पैर में सिहरन हुई और देखते-ही-देखते बच्चे ने आँखें खोल दीं। पूरे परिवार में आनन्द की लहर व्याप गई। बच्चा आज इञ्जीनियर है और वे पड़ोसी अमरेन्द्रकुमार लाल हैं।

मैं जब घर लौटकर आया, तो मैंने देखा कि गुरु महाराज मेरे डेरे पर विराजमान हैं। मैंने पैर छूकर प्रणाम किया। मेरे साथ ही आई वृद्धा ने अभी-अभी की घटना उनसे निवेदन की। गुरु महाराज ने मुझसे कहा कि परोपकार के लिए इस प्रकार के अनुभूत मन्त्रों का प्रयोग करना उचित है किन्तु अपने मन्त्र का कभी भी सकाम प्रयोग नहीं करना चाहिए। उससे सात्विक भावापन्नता में कमी आती है और कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वोन्मुखी नहीं होती।

उस दिन से मैंने गुरु के आदेश को आज तक निरन्तर पालन करने की चेष्टा की है।

आध्यात्मिक साधना में व्यावसायिक बुद्धि की आलोचना

गुरुजी उस समय व्याकुल हो उठते थे, जब किसी शिष्य को असाध्य रोग हो जाता था। उनके एक शिष्य भद्रनाथदास जी को यकृत (लीवर) की बीमारी हुई। ऐसी आशङ्का की जाने लगी कि कहीं प्राणघातक कैंसर न हो। उस समय मैंने उनकी व्याकुलता देखी। बार-बार उन्हें देखने के लिए आना, उन्हें भरोसा देना कि आप विश्वास कीजिए कि आप अच्छे हो जाएँगे, माँ के दरबार में आपका निवेदन पहुँच गया है। लम्बी बीमारी के बाद वे स्वस्थ हुए। लीवर की बीमारी उन्हें फिर नहीं हुई। इसके लिए वे आज भी परहेज करते हैं। वे स्वयं और मैं भी यही मानता हूँ कि वे गुरु की दया से ही उस आपत्ति से उबरे।

गुरुदेव वंशागत गुरु-परम्परा की कमियों को स्वीकार करते थे, लेकिन वर्तमान-युगीन अर्थकरी दृष्टि और आध्यात्मिक साधना में व्याप्त व्यावसायिक बुद्धि की आलोचना करते थे। बार-बार कहते कि शास्त्रीय मान्य सिद्धान्तों से हटकर लोग जिस-तिस को 'गुरु' मानकर उन्हें पूजते हैं। आज के अनेक गुरुओं के सम्बन्ध में उनकी धारणा अच्छी नहीं थी। वे सदैव कहते थे कि 'गृहस्थ' शिष्य को 'गृहस्थ' गुरु ही चाहिए। गृहस्थों के जीवन के उतार और चढ़ाव, आशा और निराशा, सम्पत्ति और विपत्ति को गृहस्थ ही जान सकते हैं या समझ सकते हैं।

'अभिचार'-कर्म की अपेक्षा पुरश्चरण, चक्रानुष्ठान की शिक्षा

उन्होंने साधकों की श्रेणियाँ निर्धारित की थीं। मन्त्र-दीक्षा-प्राप्त दीक्षित व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि वे नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म तथा काम्य कर्मों को करते हुए इष्ट-मन्त्र का पञ्चाङ्ग पुरश्चरण करें। शाक्ताभिषिक्त व्यक्तियों से वे चाहते थे कि वे विभिन्न प्रकार के पुरश्चरण करें—वार, मन्त्र, पञ्चाङ्ग, तिथि, नक्षत्र, योग, पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं वत्सर। उनकी यह कामना थी कि विभिन्न पुरश्चरणों के द्वारा साधक मन्त्र को जाग्रत करें। पूर्णाभिषिक्त साधकों को तो वे साक्षात् जगदम्बा ही मानते थे।

किसी प्रकार के 'अभिचार'-कर्म करने के वे पक्षधर नहीं थे। वे कहते कि 'अभिचार' के बाद प्रायश्चित्त करना अनिवार्य है, अन्यथा पूर्वोपार्जित पुण्य का क्षय होता है। वे अपना उदाहरण देते। सोनबरसा महाराजा हरिवल्लभ सिंह के वे गुरु थे। एक बार एक दूसरे जमीन्दार से किसी बात पर उनकी मुकदमे-बाजी चल गई। विरोधी ने गुरु महाराज से निवेदन किया कि आप मेरे लिए अनुष्ठान करें। वे भी उनके शिष्य थे। फलतः महाराज के विरुद्ध उन्होंने बगलामुखी का अनुष्ठान किया। महाराज की बहुत क्षति हुई और गुरु महाराज को भी अनेक प्रकार के पारिवारिक कष्टों से जूझना पड़ा।

प्रारम्भ में उनकी एक-आध सन्तान भी बड़ी बीमारी के शिकार हुए। तब से उन्होंने अभिचार या सकाम उपासना करनी बन्द कर दी। इसीलिए पूर्णाभिषिक्त शिष्यों से वे 'अभिचार' कर्म नहीं करवाते थे, लेकिन उनसे यह आग्रह अवश्य करते कि वे **'गुरु - पादुका-मन्त्र'** का जप, प्रणव की उपासना, ब्रह्म-मन्त्र की उपासना, रहस्य पूजा, चक्रानुष्ठान, वीर-साधन, रहस्य पुरश्चरण, चिता-साधन, शिव-साधन, वीर-पुरश्चरण, लता-साधन, सुन्दरी-साधन, योगिनी-साधन करें। शिवा-वलि और वटुक-भैरवोपासना करने के लिए वे सदैव कहते।

क्रमदीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक करानेवाले शिष्यों से वे पूर्णाभिषेक के कर्त्तव्य-पालन के साथ-साथ क्रम-दीक्षा के मन्त्र-कूट और स्तोत्र-कूट की साधना और तीन महा-विद्याओं की रहस्य-पूजा करने की शिक्षा देते थे।

'जप', सहस्र-नाम-पाठ की प्रमुखता

गुरुदेव **'जप'** को ही प्रमुखता देते थे। सभी श्रेणियों के साधकों से कहते कि मन्त्र का जप करो, जप करो। साधना के क्रम में वे शिष्यों से तीन बातों के लिए आग्रह करते—१ **पूजनोपरान्त कवच का पाठ, २ जप और ३ सहस्र-नाम का पाठ।** एक बार साधना में भावाविष्ट होते हुए कहा, 'अपनी रसना को सदैव रस-मय बनाओ और माँ के मन्त्र का जप करो। इसी जप से कष्ट कम होंगे, पापों का प्रतिकार होगा और यही जप तुम्हें माँ से मिलाएगा। रात-दिन श्वासों की माला बनाकर गुरु-प्रदत्त-बीज का जप करो। इस जप से साधक आत्म-बलवान होता है, उसे कर्त्तव्य का बोध होता है, साधकों की श्रेणी में स्थान पाता है और माँ को सन्तुष्ट करता है। अकेले या चक्रार्चन में माँ के मन्त्र का जप करो। श्रद्धा से युक्त होकर जो जप करता है, जप उसके जीवन को सर्वाङ्ग-पूर्ण बना देता है। यह जप जापक का पिता है, जापक की माता है और संसार में कल्याण करनेवाला है। माँ के किसी भी रूप को गुरु से दीक्षा द्वारा प्राप्त कर हृदय में बिठाओ और जप में लग जाओ। जब मन जप करने की लालसा से युक्त हो जाय और अधिकाधिक जप करने का भाव आ जाए, तो समझो कि तुम माँ के सामीप्य का लाभ कर रहे हो।"

एक बार एक साधक ने गुरु महाराज से पूछा—'गुरुदेव ! माँ का साक्षात्कार कहाँ होता है ?' उन्होंने तुरन्त कहा—'सम्पूर्ण सङ्कल्पों को छोड़कर उस चेतना-मयी माँ में स्थिर हो जाओ, उसी में मन को एकाग्र करो, उस परम तत्त्व-मयी मातृ-शक्ति को अवश्य प्राप्त कर लोगे। माँ बनकर ही माँ को पाया जाता है। माँ तो हजार रूपों में हमारे सामने हैं। वे हमारे पिता के रूप में हैं, पुत्र के रूप में हैं, सतत मुस्कान से युक्त माँ के रूप में हैं, हमारे अन्तरङ्ग मित्र के रूप में हैं, एक विश्वासी पति के रूप में हैं और कर्त्तव्य-निष्ठ पुत्र के रूप में हैं। वही गुरु-रूप में हैं। यह कहने के साथ ही तुलसीदास जी के पद को गा उठे—**जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नाम्नी। समस्त-लोक-स्वामिनी, हिम - शैल-बालिका ॥**

प्रकृति का अपार सौन्दर्य, उत्तुङ्ग तुङ्ग हिमालय, आकाश की नीरद-मालाएँ, प्रकाश विकीरित करते हुए सूर्य, कोमल मधुर रश्मियों को बिखेरती हुई चाँदनी, शीतल मधुर बासन्ती हवा, जेठ की लू से भरी हुई जलानेवाली हवा, जङ्गल की दावाग्नि, समुद्र में लगनेवाली आग, युद्ध, विनाश—सभी तो उसी के रूप हैं।

तन्त्र-साधना सर्वोपरि उपासना

गुरुदेव तन्त्र - साधना को विश्व की समस्त उपासना - पद्धतियों में सर्वोपरि मानते थे। सभी साधना की पद्धतियाँ ठीक हैं, एक ही सत्य का साक्षात्कार कराती हैं, लेकिन **तन्त्र-साधना** इसलिए श्रेष्ठ है कि इसमें भक्ति, कर्म एवं ज्ञान की त्रिधारा प्रवाहित होती है। अन्य में कहीं निवृत्ति है, कहीं प्रवृत्ति। कहीं भोग है, कहीं योग, किन्तु यहाँ तो निवृत्ति-प्रवृत्ति, योग और भोग दोनों हैं—

'भोग - योगात्मकं कौल - मतः सर्वात्मकं प्रिये !'

ज्ञान की पराकाष्ठा ही तो साधक को यह दृष्टि प्रदान करती है कि कीचड़ और चन्दन में, मित्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में तथा सोना और हरी दूब में भेद-बुद्धि नहीं रहनी चाहिए—

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नः, मित्रे शत्रौ तथा प्रिये !
श्मशाने भवने देवि ! तथैव काञ्चने तृणे ॥

भक्ति का तो कहना ही क्या ! मातृ-भक्ति से श्रेष्ठ कौन-सी भक्ति हो सकती है ? बहुत देर तक अपनी माँ से दूर रहनेवाला बच्चा या गाय का बछड़ा···बाछी या बाछा जब अपनी माँ को देखता है, तो सब कुछ भूलकर—दौड़कर माँ के शरीर से जा चिपकता है। उसके थन के दूध को चाटने लगता है, वह सब कुछ भूल जाता है। माँ भी बच्चे को देखते ही सब कुछ भूल जाती है। उसकी आँखें आर्द्र हो जाती हैं, कण्ठ गद्‌गद हो जाता है और पयोधर दुग्ध-स्नात हो जाते हैं।

मातृ-भक्ति में माँ और शिशु—दोनों रसार्द्र हो जाते हैं। रामकृष्ण परमहंस जी ने कहा है कि **'भक्त का हृदय सूखी सलाई की भाँति होता है। काठी मारो, सलाई जल जाएगी। माँ का नाम लो, माँ की प्रेम-रूपी आग सुलग जाएगी।'** मातृ-भक्ति में साधक माँ का प्रिय बच्चा है। रोना, आँसू बहाना ही उसका अस्त्र है। माँ के सामने रोओ, माँ आएगी ही। बच्चा अपने बाप की सम्पत्ति को नहीं चाहता, उसे तो खिलौना चाहिए। हाँ, खिलौना—चाहे कागज का हो, चाहे रबर का, चाहे धातु का। मातृ-भक्ति में बच्चा माँ को चाहता है, केवल माँ को, धन और सम्मान कुछ भी नहीं। सब कुछ भूल जाता है। बस, माँ का गुण-गान करना नाम का जाप करना। माँ के चरणों पर पूर्ण समर्पण, माँ के सहस्रनामों का चिन्तन। यही आज का धर्म है। इस साधना में कर्म करने की कमी नहीं है, लेकिन मातृ-भक्ति में सारे कर्म विलीन हो जाते हैं।···गुरुदेव इसी से **सहस्र-नाम के पाठ** को मातृ-भक्तों के लिए आवश्यक बताते थे।

(शेष अगले अङ्क में)

कौल-कल्पतरु चण्डी

'चण्डी' मासिक पत्रिका की विशेषता यह है कि यदि आप इसे ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे, तो आपको **हिन्दू-धर्म के 'व्यावहारिक पक्ष'** को समझने में बड़ी सरलता होगी। 'हिन्दू-धर्म' केवल एक-सिद्धान्त या दर्शन मात्र नहीं है। उसका **ज्ञान-मय क्रियात्मक पक्ष** भी है और वही वास्तविक महत्त्व-वाला है। अतः निवेदन है कि **'चण्डी' मासिक पत्रिका** के सदस्य आज ही बनें।

वार्षिक मूल्य ६५-०० रु० । एक प्रति ६-०० रु०

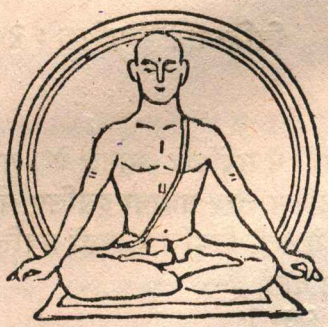

निद्रा और शिथिलीकरण

डा० आर० पी० पाण्डेय, बिलासपुर (म० प्र०)

व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन-काल में **'नींद'** और **'जागृत'** अवस्था, एक के बाद एक, क्रमशः २४ घण्टे में होती रहती है। इस स्वाभाविक घटना के कारण का पता लगाने के लिए अथक परिश्रम किया गया, परन्तु अभी तक **निद्रा** के निश्चित कारण का पता लगाना सम्भव नहीं हो सका। निद्रावस्था में शरीर के सभी अङ्ग (यकृत, हृदय, फुफ्फुस, पाचन - प्रणाली आदि) अपने कार्य में रत रहते हैं। इसी प्रकार निद्रा में मस्तिष्क भी कार्य-रत रहता है।

परिभाषा : निद्रा चेतना की वह अवस्था है, जो जागृत अवस्था से भिन्न होती है तथा जिसमें वातावरण की घटनाओं पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, परन्तु मस्तिष्क के कार्य में अत्यधिक सावधनी रखती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि **निद्रा** एक समान घटना नहीं है। यह भिन्न व्यक्तियों में तथा एक ही व्यक्ति में प्रकृति तथा गहराई में भिन्न होती है।

निद्रा का समय : पशु एवं मानव २४ घण्टे में **निद्रा** की एक ही अवधि लेते हैं। यह स्वभाव पर आश्रित है। प्रायः रात्रि का समय ही **निद्रा** द्वारा विश्राम के लिए उपयोग में लाया जाता है, परन्तु रात्रि में काम करनेवालों को दिन में ही **'निद्रा'** का सहारा लेना पड़ता है।

निद्रा की अवधि : यह आयु के साथ भिन्न होती है। नव-जात शिशु १६ से ३० घण्टे, बालक १२ से १४ घण्टे, वयस्क ७ से ९ घण्टे और वृद्ध ५ घण्टे सोते हैं।

निद्रा की गहराई : वयस्क की **निद्रा** में एक घण्टे के अन्त में अत्यधिक गहराई आ जाती है। बालकों में दो बार—१. प्रथम और द्वितीय घण्टे के मध्य में तथा २. ८ वें और ९ वें घण्टे के मध्य में गहरी 'निद्रा' होती है। ऐसी **निद्रा** में स्वप्न नहीं दिखाई देते।

निद्रा का प्रभाव : सभी इन्द्रियों पर निद्रा का समान प्रभाव नहीं पड़ता। गन्ध और स्वाद अत्यधिक कम हो जाते हैं। वेदना से स्पर्श और श्रवण प्रभावित होते हैं। इसलिए सोते हुए व्यक्तियों को इन सम्वेदनाओं द्वारा जगाया जा सकता है।

निद्रा मानव की स्वाभाविक **'शिथिलीकरण'** की दशा है। उसकी गहराई को नापने के लिए एक यन्त्र का प्रयोग किया जाता है, जिसे 'इलेक्ट्रो-इनके-जेनोग्राम' कहते हैं।

ई० ई० जी० यन्त्र : इस यन्त्र में विद्युत्-कार्य-शीलता स्वेच्छानुकूल होती है। मस्तिष्क द्वारा चलित विद्युत्-प्रवाह होता है। यह प्रवाह खोपड़ी में लगाए तार (इलेक्ट्रोड) की सहायता से ई० ई० जी० यन्त्र के द्वारा अङ्कित होता है। इसे 'ई-ई ग्राफ' कहते हैं। इसके अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि मानव में चार प्रकार की विद्युत्-लहरें प्रवाहित होती हैं—१. अल्फा, २. बीटा, ३. थीटा और ४. डेल्टा।

अल्फा लहरें—ये अत्यन्त स्पष्ट लहरें हैं। अँधेरे स्थान में आँखें बन्द रखने पर, जब मस्तिष्क सर्वथा विश्राम की दशा में हो, इन लहरों की अनुभूति होती है। मानसिक थकान एवं किसी प्रकार की बाधा पड़ने पर ये लहरें लुप्त हो जाती हैं।

बीटा लहरें—इन लहरों की गति 'अल्फा' लहरों से दूनी रहती है, परन्तु मानसिक क्रिया की प्रति-क्रिया में ये लुप्त हो जाती हैं। केन्द्रीय तन्त्रिका की अधिक कार्य-शीलता में तनाव के समय ये पुनः अनुभूत होती हैं।

थीटा लहरें—२ से ५ वर्ष की आयु के बच्चों में ये लहरें स्पष्ट रूप से मिलती हैं।

डेल्टा लहरें—ये लहरें वयस्क में विरल हैं। प्रायः गहरी निद्रा में पाई जाती हैं। शिशु में निद्रा व जाग्रत् अवस्था-दोनों समय मिलती है। निद्रावस्था में कभी-कभी स्वप्न भी आते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक इस अवस्था को ऐसी स्थिति बताते हैं, जिसका सम्बन्ध स्वप्नावस्था से रहता है।

निद्रावस्था में आने के पूर्व मानव पाँच अवस्थाएं पार करता है। 'निद्रा'—विश्राम या शान्ति की वह दशा है, जिसमें **चेतना** आज्ञानुसरण करती है। यह मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति है। **'निद्रा'** की संरचना में मानसिक प्रभाव भी पड़ता है। अनेक व्याधि-दशाएँ भी **'निद्रा'** में रूपान्तरित होती हैं। **'निद्रा'** आते ही मांस-पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, पलकें लटक जाती हैं और आँखें एक ओर से दूसरी ओर चक्कर लगाना प्रारम्भ करती हैं। विज्ञान इसे **प्रथमावस्था** कहता है।

निद्रा की गहरी **द्वितीय अवस्था** में आँख की गति रुक जाती है, परन्तु मांसल तनाव स्थिर रहता है।

तीसरी अवस्था में शरीर की गति में वृद्धि होती है—**मुख्यतः** आँखों की गति में। तदनन्तर क्रमशः **निद्रा** की **चौथी अवस्था** आती है। ऋषि और योगियों के अनुसार उक्त प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय तीनों अवस्थाएं **स्वप्नावस्था** ही हैं।

चौथी अवस्था को योगी एवं ऋषि लोग **सुषुप्ति-अवस्था** कहते हैं। यह **निद्रा** की वह दशा है, जिसमें स्वप्न नहीं होता। वेदान्तियों के अनुसार इस दशा में मानव ऐसी दैहिक अवस्था में चला जाता है, जिसमें स्मरण-हीन-चेतना में, आत्मा और परमात्मा एकाकार हो जाते हैं। यद्यपि यह दशा स्वप्नावस्था की है, परन्तु जागृत अवस्था के समान ही रहती है।

सुषुप्ति की **गोलक-गति-विहीन** अवस्था में शरीर का ताप गिर जाता है तथा हृदय-स्पन्दन एवं श्वसन-गति मन्द हो जाती है। प्राण - वायु (आक्सीजन) का व्यय भी कम हो जाता है। मूत्र-निष्कासन का रसाकर्षण, प्लाविका-स्तर तथा 'कार्टीकोस्टीरायड' का उत्पादन—ये सभी निद्रावस्था में बढ़ जाते हैं, परन्तु **गोलक-गति** स्वप्नावस्था में सुषुप्ति की अपेक्षा उच्च-स्तर में रहती है, जबकि सुषुप्ति-अवस्था में इसके विरुद्ध होता है।

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल

[१]

सुठि पाँचहु तत्त्व इतै बिलसैं,
अरु पाँचहु प्राणन की बँसुरी है।
अकुलौ सह चक्र छहौ दरसैं,
जिनमें दमकै बल की बिजुरी ॥
विधि - विष्णु - शिवादिक वास करैं,
रवि-सोम-ग्रहादिन केरि धुरी है।
पर - ते - पर जौन वहौ यहि मा,
नर-देह नहीं यह देव - पुरी है ॥

[२]

पढ़ि मन्त्र यथा-विधि ध्यान धरे,
अपने कहँ इष्ट-स्वरूपहि मानो।
बस 'हंस' बनो कर तन्त्र - क्रिया,
मन में न दुई कहँ देउ ठिकानो।
यहि भाँति सु-साधन सिद्ध करो—
अनुभूति करो, निज को पहचानो।
गुरु - देव बतायनि सूधि गली,
यहि ते चलि के अपनो घर जानो ॥

साधनमाला

[कार्तिक-अङ्क (नवम्बर, ९३) से आगे]

(१३५)

शत्रु-विनाशक आदित्य-हृदय

डा० वी० एन० दुबे, पेटलावद (गुजरात)

हजारों वर्षों से अनुभूत 'आदित्य-हृदय स्तोत्र' अल्प-से-अल्प समय में सिद्धि देने-वाले प्रयोगों में से एक है। जब भगवान् राम रावण के साथ युद्ध करते-करते क्लान्त हो गए, तब तान्त्रिक अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कारक ऋषि अगस्त्य ने आकर भगवान् राम से कहा कि '३ बार जल का आचमन कर, इस 'आदित्य-हृदय' का तीन बार पाठ कर रावण का वध करो।' राम ने तीन बार पाठ किया, जिससे उनकी क्लान्ति मिट गई और नए उत्साह का सञ्चार हुआ। युद्ध भीषण हुआ और रावण मारा गया।

रविवार को जब संक्रान्ति हो, उस दिन सूर्य-मन्दिर में, नव-ग्रह मन्दिर में अथवा अपने घर में सूर्य देवता के समक्ष इस स्तोत्र का ३ बार पाठ करें। न्यास, विनियोगादि सक्रान्ति के ५ मिनट पूर्व प्रारम्भ कर दें। ज्योतिषी या पण्डित से संक्रान्ति का सही समय पूछ लें कि सूर्य कितने बज कर कितने मिनट पर एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण करेगा। प्रयोग के दिन बिना नमक का भोजन करे।

'कृत्य-कल्पतरु' (व्रत-काण्ड—१९-२०) के अनुसार १०८ बार इसका पाठ करना चाहिए। जो लोग केवल तीन ही पाठ करें, वे १०८ बार 'गायत्री मन्त्र' का जप अवश्य कर लें।

विनियोग—ॐ अस्य आदित्य-हृदय-स्तोत्रस्य श्रीअगस्त्य ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीब्रह्मा देवता, ॐ बीजं, रश्मि-मते शक्तिः, अभीष्ट-सिद्धयर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीअगस्त्य-ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप् - छन्दसे नमः मुखे। श्रीब्रह्मा-देवतायै नमः हृदि। ॐ-बीजाय नमः गुह्ये। रश्मि-मते शक्तये नमः पादयोः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् कीलकाय नमः नाभौ।

षडङ्ग-न्यास—कर-न्यास और अङ्ग-न्यास तीन प्रकार से किए जाते हैं। केवल प्रणव (ॐ) से, गायत्री-मन्त्र से अथवा 'रश्मि-मते नमः' इत्यादि छः नाम-मन्त्रों से। यहाँ नाम-मन्त्रों से न्यास की विधि दी जाती है—

ॐ रश्मि-मते अंगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः)। ॐ समुद्यते तर्जनीभ्यां नमः (शिरसे स्वाहा)। ॐ देवासुर-नमस्कृताय मध्यमाभ्यां नमः (शिखायै वषट्)। ॐ विवस्वते अनामिकाभ्यां नमः (कवचाय हुं)। ॐ भास्कराय कनिष्ठिकाभ्यां नमः (नेत्र-त्रयाय वौषट्)। ॐ भुवनेश्वराय कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः (अस्त्राय फट्)।

अब गायत्री-मन्त्र से भगवान् सूर्य का ध्यान एवं नमस्कार करे।

॥ पूर्व-पीठिका ॥

ततो युद्ध-परिश्रान्तं, समरे चिन्तया स्थितम्। रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा, युद्धाय समुपस्थितम् ॥
दैवतैश्च समागम्य, द्रष्टुमभ्यागतो रणम्। उपगम्याब्रवीद् राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥
'राम, राम, महा-बाहो! शृणु गुह्यं सनातनम्। येन सर्वानरीन् वत्स! समरे विजयिष्यसे ॥
आदित्य - हृदयं पुण्यं, सर्व-शत्रु - विनाशनम्। जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥
सर्व-मङ्गल-माङ्गल्यं, सर्व - पाप - प्रणाशनम्। चिन्ता-शोक - प्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥
रश्मि-मन्तं समुद्यन्तं, देवासुर - नमस्कृतम्। पूजयस्व विवस्वन्तं, भास्करं भुवनेश्वरम्' ॥

॥ मूल स्तोत्र ॥

सर्व-देवात्मको ह्येष, तेजस्वी रश्मि-भावनः। एष देवासुर-गणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः ॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च, शिवः स्कन्दः प्रजा-पतिः। महेन्द्रो धनदः कालो, यमः सोमो ह्यपां पतिः।
पितरो वसवः साध्या, अश्विनो मरुतो मनुः। वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण, ऋतु-कर्ता प्रभाकरः ॥
आदित्यः सविता सूर्यः, खगः पूषा गभस्ति-मान्। सुवर्ण-सदृशो भानुर्हिरण्य-रेता दिवाकरः ॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः, सप्त-सप्तिर्मरीचि-मान्। तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टा मार्तंडकोंऽशु-मान्।
हिरण्य-गर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः। अग्नि-गर्भोऽदितेः पुत्रः, शङ्खः शिशिर-नाशनः ॥
व्योम-नाथस्तमो-भेदी, ऋग्यजुः-साम-पारगः। घन-वृष्टिरपां मित्रो, विंध्य-वीथी-प्लवङ्गमः।
आतपी मण्डली मृत्युः, पिङ्गलः सर्व-तापनः। कविर्विश्वो महा-तेजा, रक्तः सर्व - भवोद्भवः ॥
नक्षत्र-ग्रह-ताराणामधिपो विश्व-भावनः। तेजसामपि तेजस्वी, द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥
नमः पूर्वाय गिरये, पश्चिमायाद्रये नमः। ज्योतिर्गणानां पतये, दिनाधिपतये नमः ॥
जयाय जय-भद्राय, हर्यश्वाय नमो नमः। नमो नमः सहस्रांशो, आदित्याय नमो नमः ॥
नमः उग्राय वीराय, सारङ्गाय नमो नमः। नमः पद्म-प्रबोधाय, प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय, सूरायादित्य-वर्चसे । भास्वते सर्व - भक्षाय, रौद्राय वपुषे नमः ।।
तमोघ्नाय हिमघ्नाय, शत्रुघ्नायामितात्मने । कृतघ्नघ्नाय देवाय, ज्योतिषां पतये नमः ।।
तप्त-चामीकराभाय, हरये विश्व-कर्मणे । नमस्तमोऽभिनिघ्नाय, रुचये लोक - साक्षिणे ।।
नाशयत्येष वै भूतं, तमेव सृजति प्रभुः । पायत्येष तपत्येष, वर्षत्येष गभस्तिभिः ।।
एष सुप्तेषु जागर्ति, भूतेषु परि-निष्ठितः । एष चैवाग्नि-होत्रं च, फलं चैवाग्नि-होतृणाम् ।।
देवाश्च क्रतवश्चैव, क्रतूनां फलमेव च । यानि कृत्यानि लोकेषु, सर्वेषु परम - प्रभुः ।।
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु, कान्तारेषु भयेषु च । कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ! ।।
पूजयस्वैनमेकाग्रो, देव-देवं जगत्-पतिम् । एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा, युद्धेषु विजयिष्यसि ।।
अस्मिन् क्षणे महा-बाहो, रावणं त्वं जहिष्यसि । एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो, जगाम स यथाऽऽगतं।
एतच्छ्रुत्वा महा-तेजा, नष्ट-शोकोऽभवत् तदा । धारयामास सु-प्रीतो, राघवः प्रयतात्म-वान् ।
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं, परं हर्षमवाप्त-वान् । त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा, धनुरादाय वीर्य-वान् ।।
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा, जयार्थं समुपागमत् । सर्व - यत्नेन महता वृतस्तस्य वधेऽभवत् ।।

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं, मुदित-मनाः परमं प्रहृष्य-माणः ।
निश्चिरपति-संक्षयं विदित्वा, सुर-गण-मध्य-गतो वचस्त्वरेति ।।

।। वाल्मीकीय-रामायणोक्तमादित्य-हृदयं समाप्तम् ।।

(१३६)

श्रीखड्ग-रावण मन्त्र-विधि

—पं० कृष्णानन्द मिश्र, 'वैद्य', ककरा, दुबावल, प्रयाग की कृपा से

विनियोग—ॐ अस्य श्रीखड्ग - रावण-मन्त्रस्य श्रीशङ्कर ऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीखड्ग - रावण देवता, भूत - प्रेत - पिशाच - ब्रह्म - राक्षस मम (अमुक) निवारणे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि - न्यास—श्रीशङ्कर-ऋषये नमः शिरसि । विराट् - छन्दसे नमः मुखे । श्रीखड्ग-रावण-देवतायै नमः हृदि । भूत-प्रेत-पिशाच-ब्रह्म-राक्षस मम निवारणे नमः गुह्ये । अं नमः पादयोः ।

कर-न्यास (अङ्ग-न्यास)—१ ॐ नमः पशुपते, ॐ नमः भूताधिपतये ॐ नमः रुद्राय अंगुष्ठाभ्यां (हृदयाय) नमः । २ ठः ठः खड्ग - रावण विहर विहर शर शर, नृत्य नृत्य,

श्मशान - भस्म - चर्चित - शरीराय तर्जनीभ्यां (शिरसे) स्वाहा । ३ घण्टा-कपाल-माला-धराय व्याघ्र-चर्म-परीधानाय शशाङ्क-कृत-शेखराय कृष्ण - सर्प - यज्ञोपवीतने मध्यमाभ्यां (शिखायै) वषट् । ४ चल चल, वल वल, चल चल अग्नि-वर्तिते कपालिने अनामिकाभ्यां (कवचाय) हुं । ५ हन हन भूतान्, त्रासय त्रासय मण्डल - मध्ये कट कट कनिष्ठिकाभ्यां (नेत्र - त्रयाय) वौषट् । ६ रुद्रांकुशेन शमय शमय, प्रवेशय प्रवेशय, आवेशय आवेशय, चण्डासि-धराऽधिपति-रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां (अस्त्राय) फट् ।

ध्यान— उमेशकेशमीश्वरं, महेशमेशमीश्वरम्,
कपाल-शूल-कर्तृ काऽसि-चाप - मुण्ड - सन्धरम् ।
नृ-मुण्ड-खण्ड-मालया सु-शोभिताङ्ग-निर्मलम्,
स्मरामि खड्ग-रावणं, सदा श्मशान-वासकम् ।।

मन्त्र—ॐ नमः पशुपतये ॐ नमः भूताधिपतये ॐ नमः रुद्राय ठः ठः खड्ग-रावण विहर विहर, शर शर, नृत्य नृत्य । श्मशान-भस्म-चर्चित-शरीराय, घण्टा-कपाल-माला-धराय, व्याघ्र-चर्म-परीधानाय, शशाङ्क-कृत-शेखराय, कृष्ण-सर्प-यज्ञोपवीतने चल चल, वल वल । अग्नि-वर्तिते, कपालिने, हन हन, भूतान् त्रासय त्रासय, मण्डल-मध्ये कट कट, रुद्रां-कुशेन शमय शमय, प्रवेशय प्रवेशय, आवेशय आवेशय, चण्डासि-धराऽधिपति-रुद्रो ज्ञाप-यति स्वाहा ।

।। विधि ।।

साधकः प्रातरुत्थाय, प्रातः-कर्म समाप्य च । भूत-शुद्धयादिकं कृत्वा, मातृकाः विन्यस्य च ।।
खड्ग-रावण-मन्त्रस्य, ततो न्यासं समाचरेत् । अङ्ग-न्यासं समाप्येव, यन्त्र-पूजां समाचरेत् ।।

।। यन्त्रोद्धार ।।

त्रिकोणं च विन्दु-संयुक्तं अष्ट-गन्धेन सुव्रते । आवाह्य पूजयेत् देवि ! यन्त्राणां च पृथक्-पृथक् ।।

।। आवाहन-मन्त्र ।।

आगच्छ गिरिजा-कान्त, खड्ग-रावण शङ्कर ! कल्याणं कुरु देवेश ! भूतान् नाशय नाशय ।।

आवरण-पूजन—विन्दौ खं खड्ग-रावणाय नमः । दक्ष - कोणे काल्यै नमः । अग्रे लक्ष्म्यै नमः । वामे सरस्वत्यै नमः । अष्ट-पत्रेषु सम्पूज्यो, भैरवाय च संक्रमात् । असि-ताङ्गो रुद्रश्चण्डो, क्रोधोन्मत्त-कपालिकैः । संहारी भीषणश्चैव, अष्ट - सिद्धि - प्रदायकः । नाम चतुर्थ्यन्त पूजयेत् । भूपुरस्य चतुर्द्वारे, पूजयेत् वेद - देवताः । पूर्वे गणेशं सम्पूज्यं, दक्षिणे ईश्वरं तथा, पश्चिमे वटुकं चैव । नृसिंहं चोत्तरे ततः ।

।। दीप-दान-विधिम् ।।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, दीप-दान-विधिं शुभां । तस्याचरण-मात्रेण, कार्य-सिद्धि भवेद् ध्रुवं ।।
भूत-प्रेत-भये देवि ! डाकिनी-शाकिनी-भये । पूतना-रक्तिका-त्रासे, तथा कूष्माण्डके भये ।।
बेताल-ब्रह्म-क्रूराणां, भये चैव हि सुन्दरि ! दीप-दानं चरेद् देवि ! नाशमायान्ति तत्क्षणात् ।।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, दीप-दान-विधिं यथा । गोमयेनोप-लिप्तायां, भूमावष्ट-दलं लिखेत् ।।
तमाच्छाद्य सु-वस्त्रेण, स्थाने निर्वातके । शिवे ! ताम्र-दीपं समानीयं संस्थापयेद् बुधः ।।
तं तु षोडश-संयुक्ता, वर्तिका स्थापयेत् सुधी । तिल-तैलेन देवेशि ! पूरयेद् दीप-पात्रकम् ।।
प्रज्वाल्य दीपं देवेशि ! पठेन्मन्त्रं वरानने ! पूजनं तूपचारेण, कुर्याद् दीपस्य पार्वति ! ।।
शिखायां रावणं पश्येत्, जपेन्मन्त्रं वरानने !

।। फल-श्रुति ।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं, तदर्धं वा सुरेश्वरि ! अयुतो प्रजपेत् देवि ! नातो न्यूनं कदाचन ।।
लक्ष-जापेन देवेशि ! भूत-प्रेताश्च राक्षसाः । ब्रह्म-राक्षस-वेताला, कूष्माण्डा दुष्ट-जातयः ।।
पलायन्ते महेशानि ! पायाद्रुनवतो प्रिये ! पूर्वोक्तं च जपेन्मन्त्रं, हुनेत् मध्वाक्तकं तिलं ।।
भोजयेत् वाडवान् देवि ! पूर्वोक्तं च फलं लभेत् । राज-शत्रु-विनाशार्थं, जपेन अयुतं प्रिये !।।
हुनेत् सदा महेशानि!तिल-गुडेन समन्वितम् । स शीघ्रं मारयेत् शत्रून्, नात्र कार्या विचारणा ।।
बिल्व-मूले जपेन्मन्त्रं, एकादश-सहस्रकम् । हुनेत् च मालती-पुष्पं, तद्-दशांशं वरानने ! ।।
स शीघ्रं वशयेद् देवि ! उन्मत्तामप्सरसां गणाः । किं पुनः क्षुद्र-जातीनां, वशीकरणमीश्वरि !।।
रसायुतो जपेन्मन्त्रो, पिप्पलाधो महेश्वरि ! तद्दशांशं हुनेत् देवि ! लगुडं सह सर्पिषा ।।
बिल्व-पत्रं फलं चैव, मध्वाक्तं सह सर्षपैः । मोहनं जायते सद्यो, भूपालानां च महेश्वरि !।।
वाणायुतं जपेन्मन्त्रं, श्मशाने वा शवोपरि । हुनेदुलूक - मांसं च, काक - मांसेन संयुतम् ।।
उच्चाटनं भवेद् देवि ! महतां नाग-नन्दिनि ! सार्ध-लक्षं जपेन्मन्त्रो, शिवस्यायतने शुभे ।।
दशांशं च हुनेद् देवि ! पायसं मधु-संयुतम् । आकर्षणं भवेत् सद्यो, लक्ष-क्रोशार्धतोऽपि वा ।।
लक्ष-त्रयं जपेन्मन्त्रं, हरिद्रा-ग्रन्थि-मालया । हरिद्रा-मूलमाश्रित्य, पूजयेत् गण - नायकम् ।।
दशांशं च हुनेद् देवि ! घृताक्तं च ति ल-राजिकां । स्तम्भनं जायते सद्यो, गवां चन्द्रार्क-पायसां ।।
इति गुप्तं महेशानि ! न देयं यस्य कस्यचित् । मम भक्ताय दातव्यं, अन्यथा पतनं भवेत् ।।

।। रुद्र-यामले खड्ग-रावण-विधिः ।।

(१३७)

नारायणास्त्र

[**'नारायण'** भगवान् विष्णु का प्रख्यात नाम है। देवर्षि नारद इसी शुभ नाम का निरन्तर जप करते रहते थे और उनकी गति समस्त ब्रह्माण्डों तक व्यापक हो गई थी। उन्हीं परम प्रतापी **श्रीनारायण** का यह अमोघ **'नारायणास्त्र'** भक्त - जनों के कल्याणार्थ यहाँ विशुद्ध रूप में प्रस्तुत है।—सम्पादक]

हरिः ॐ नमो भगवते श्रीनारायणाय, नमो नारायणाय विश्व-मूर्तये, नमः श्रीपुरुषोत्तमाय। युष्मद्-दृष्टि-प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा, अजीर्ण पञ्च-विषूचकं हन-हन। ऐकाहिक्यं द्व्याहिक्यं व्याहिक्यं चातुर्थिक्यं ज्वरं नाशय-नाशय। चतुरशीत - वातानष्टादश - कुष्टान् अष्टादश-क्षय-रोगान् हन-हन। सर्व-दोषान् भञ्जय - भञ्जय। शत्रून् मारय - मारय। उच्चाटयोच्चाटय। विद्वेषय-विद्वेषय। स्तम्भय-स्तम्भय। निवारय-निवारय। विघ्नैर्हन-हन, दह-दह, मथ - मथ, विध्वंसय - विध्वंसय। चक्रं गृहीत्वा शीघ्रमाच्छागच्छ। चक्रेण हत्वा पर-विद्यां छेदय-छेदय, भेदय-भेदय। चतुरशीतानि विस्फोटय-विस्फोटय। अर्श वात-शूलि-दृष्टि-सर्प-सिंह-व्याघ्र-द्विपद-चतुष्पद-पदे बाह्य - दिवि भुव्यन्तरिक्षे अन्येऽपि केचित् तद् - वेषकान् सर्वान् हन - हन। विद्युन्मेघ-नदी-पर्वत-ताटवी-सर्व-स्थान-रात्रि-दिन-पन्था-चौरान् वशं कुरु-कुरु।

मन्त्र—हरिः ॐ नमो भगवते, ह्रीं हुं फट् स्वाहा, ठ ठ ठ ठ हृदयादत्ता।
एषा विद्या महा-नाम्नी, पुरा दत्ता शत-क्रतवे। असुरानेव जित्वा तान्, सर्वांश्च बल-दानवान्॥
यः पुमान् पठेत् भक्त्या, वैष्णवो नियतात्मना। तस्य सर्वाणि हिंसन्ति, यत्र दृष्टि-गतं विषम्॥
अन्य देह-विषं चैव, न देहे संक्रमेद् ध्रुवम्। संग्रामे धारयत्यङ्गे, स शत्रून् जयते क्षणात्॥
अतः सद्यो जयस्तस्य, विघ्नस्तस्य न जायते। किमत्र बहुनोक्तेन, सर्व-सौभाग्य-सम्पदः॥
लभते नात्र सन्देहो, नान्यथा न भवेदिति। गृहीतो यदि वातेन, बलिना विविधैरपि॥
शीतं समुष्णतां याति, चोष्णं शीतलतां व्रजेत्। नान्यथा भवते विद्या, यः पठेत् कथितं मया॥
भूर्ज-पत्रे लिखेन्मन्त्रं, गोरोचन-जलेन च। इमां विद्यां स्वके बद्ध्वा, सर्व-रक्षां करोतु मे॥
पुरुषस्याथवा स्त्रीणां, हस्ते बद्ध्वा विलक्षणः। विद्रवन्ति च विघ्नानि, न भवन्ति कदाचन॥
न भयं तस्य कुर्वन्ति, गगने भास्करादयः। भूत-प्रेत-पिशाचाश्च, ग्राम-ग्राहित-डाकिनी॥
शाकिनी तु महा-घोरा, वेतालाश्च महा-बलाः। राक्षसाश्च महा-रौद्रा, दानवा बलिनो हि ये॥
असुराश्च सुराश्चैव, अष्ट-योनिश्च देवताः। सर्वत्र स्तम्भिताऽतिष्ठन्मन्त्रोच्चारण-मात्रतः॥

सर्व-हत्याः प्रणश्यन्ति, सर्वं फलति नित्यशः। सर्वे रोगा विनश्यन्ति, विघ्नस्तस्य न बाधते ॥
उच्चाटनेऽपराह्ने तु, सन्ध्यायां मारणे तथा। शान्तिके चार्द्ध-रात्रे तु, ततोऽर्थः सर्व-कर्मकैः ॥
इदं मन्त्र-रहस्यं च, नारायणास्त्रमेव च। त्रि-कालं जपते नित्यं, जयं प्राप्नोति मानवः ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं, ज्ञानं विद्यां पराक्रमम्। चिन्तितार्थ-सुख-प्राप्ति, लभते नात्र संशयः ॥

(१३८)

श्रीकाली-ताण्डवोक्त

धूम्र-पान विधिः

[ककरा, दुबावल, इलाहाबाद के पूज्य पं० कृष्णानन्दजी मिश्र वैद्य की कृपा से प्राप्त]

॥ नन्दिकेश्वर उवाच ॥

देव-देव महा - प्राज्ञ, सैव विद्या-मयि शिवे ! सर्व-शूलं ममापन्नं, पित्राणां साधनोत्तमः ॥
किं विद्यानां भवेत् तस्य, किं ध्यानं किं फलम्। किं चक्रं किं विद्यास्य, सर्वं ब्रूहि दया-निधे ॥

॥ महा-काली उवाच ॥

विश्वामित्रो ऋषिरस्य, छन्दोऽग्निश्च प्रकीर्तितः। देवता चापि विद्यया, दक्षिणा बीजं शक्ति च। पानीभ्य मयि कीलकं, धूम्र-पानी महा-काली, धारणे च विनियोगः। ह्रीङ्कारं मे मुखं पातु, मृत-सञ्जीवनी करे। नारिकेले महा-लक्ष्मी, तमाले विजया स्मृतम् ॥
लम्ब-ग्रीवा महा-विद्या, तमाली सुर-सुन्दरी। अग्नि-चौरो च नीरक्षेत्, धूम्र-पानं शिवं कुरु।

ॐ ह्रीं ह्रीं, हिलि हिलि, मिलि मिलि, सर्वं सर्वं - संक्षोभिणो, ल्हादिनी, मृत-सञ्जीवनी, वज्र - वैरोचनी, महा-काली-मुखे शिव - सहित धूम्र-पानं मया कर्तुं अपराध क्षमस्व स्वाहा।

अधोर्ध्वं रं ॐ मुकुर-समग्नि-तमाल-धूम्रम्, अग्नि-विष्टदं शुभम्। समुद्र - तोये तु समायुक्ते च, सेष्टः भवेत्। नारीक गुड गुड।

एवं ध्यात्वा पिवेद् धूम्रम्, सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत्।
आदौ तीर्थं कृते पानं पश्चात् धूम्राभिषेचने। शक्ति-पूजां ततः कुर्यात्, पक्व-शुद्धि च चर्वयेत् ॥
रक्त-पानं ततः कृत्वा, संतुष्टो कालिका भवेत्। धूम्र-पानं विना नंदी, न मंत्रः सिद्धि-दायकः ॥
शत-लक्षं प्रजप्त्वाऽपि, न सिद्ध-मन्त्र-भाग् भवेत्। धूम्र-पानं कृते, सद्यः प्रत्यक्ष-सिद्धि-दायकः ॥
त्रैलोक्ये जायते कीर्तिः, वाक् - सिद्धिर्जायते ध्रुवम्।

(१३६)

श्रीमहा-काल-कवचम्

॥ महा-काल का ध्यान ॥

कोटि-कालानलाभासं, चतुर्बाहुं त्रिलोचनं । श्मशानाष्टक-मध्यस्थं, मुण्डाष्टक-विभूषितम् ॥
पञ्च-प्रेत-स्थितं देवं, त्रिशूलं डमरुं तथा । खड्गं च खर्परं चैव, वाम-दक्षिण - योगतः ॥
विभ्रतं सुन्दरं देहं, श्मशान-भस्म-शोभितम् । नाना-शवैः क्रीडमानं, कालिका-हृदय-स्थितम् ॥
लालयन्तं रतासक्तं, घोर-चुम्बन-तत्परम् । गृद्ध्र-गोमायु-संयुक्तं, भैरवी-गण-संयुक्तम् ॥
जटा-पटल-शोभाढ्यं, सर्व-शून्यालये स्थितम् । सर्व-शून्यं मुण्ड-भूषं, प्रसन्न - वदनं शिवम् ॥

भगवान् महा-काल का उक्त प्रकार से ध्यान कर आवाहनादि करे । फिर पञ्चोपचारों से पूजन कर 'कवच-स्तोत्र' का पाठ करे । यथा—

॥ पूर्व-पीठिका—भैरव्युवाच ॥

देव-देव महा-देव ! भक्तानां सुख-वर्धनम् । केन सिद्धि ददात्याशु, काली त्रैलोक्य-मोहिनी ॥
तन्मे वद दयागार ! साध्वकाभीष्ट-सिद्धये । कृपां कुरु जगन्नाथ ! वद वेद - विदां वर ! ॥

॥ भैरव उवाच ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन, तत्त्वात् तत्त्वं परात्परम् । द्रुत-सिद्धि-करं सत्यं, किमहो कथयाम्यहम् ॥
महा-कालमहं वन्दे, सर्व-सिद्धि-प्रदायकम् । देव-दानव-गन्धर्वैः, किन्नरैः परि - सेवितम् ॥
कवचं तस्य पठनाद्, कालिका घोर-दक्षिणा । सत्यं भवति सान्निध्या, कवच-स्तवनान्तरम् ॥
सिद्धिं ददाति सा तुष्टा, श्रुत्वा कवचमुत्तमं । साम्राज्यत्वं श्रियं दत्वा, पुत्र-वत् परि-पालयेत् ॥

विनियोग : ॐ ॐ ॐ कवचास्य ऋषिर्देवी कालिका दक्षिणेरिता । विराट् छन्दस्तु विज्ञेयं, महा-कालस्तु देवता । कालिका-साधने चैव, विनियोगः प्रकीर्तितः ॥

॥ मूल कवच-स्तोत्र ॥

धनं पुत्रं सदा पातु, बन्धु-दारा-निकेतनम् । पिङ्गलाख्यः सदा पातु, वैरि-मध्ये विशेषतः ॥
महा-भीमः सदा पातु, युद्धे नित्यं जय-प्रदः । सभायां सर्व-दुष्टघ्नः, पातु स्व-स्थान-वल्लभः ॥
श्मशानस्थो महा-रुद्रो, महा-कालो दिगम्बरः । कपालं कर्तृकां वामे, शूलं खट्वाङ्ग दक्षिणे ॥
भुजङ्ग-भूषिताङ्गोपि, भस्मास्थि-मणि-मंडितः । ज्वलत्पावक-मध्यस्थो, भस्म-शय्या-व्यवस्थितः
विपरीत-रतां तत्र, कालिकां हृदयोपरि । पेयं खाद्यं च चोष्यं च, तौ च कृत्वा परस्परम् ॥
पार्श्व-स्थितो महा-देवः, सर्वदा परि-रक्षतु ॐ ॐ ॐ ।

॥ फल-श्रुति—भैरव उवाच ॥

इति ते कथितं तुभ्यं, देवानामपि दुर्लभम् । पठनात् कालिका देवी, तुष्टा भवति निश्चितम् ॥
श्मशाने पठनादेव, विघ्न-नाशस्तदा भवेत् ।
सम्पूज्य कालिकां देवीं, पठेत् कवचमुत्तमम् । शृणुयाद् प्रयत्नेन, शुचि-स्नातः समाहितः ॥
सर्व-व्याधि-विनिर्मुक्तः, सदाऽऽनन्द-मयो भवेत् ।
श्रद्धयाऽश्रद्धया वाऽपि, पठनात् कवचस्य तु । सर्व-सिद्धिमवाप्नोति, यद्यन्मनसि वर्तते ॥
बिल्व-मूले पठेद् यस्तु, भक्ति-श्रद्धा-समन्वितः । त्रिसन्ध्यं पठनाद् देवि !भवेन्नित्यं महा-कविः ॥
कुमारीं पूजयित्वा तु, यः पठेद् भाव-तत्परः । न किञ्चिद् दुर्लभं तस्य, दिवि वा भुवि मोदते ॥
दुर्भिक्षे राज - पीडायां, संग्रामे वैरि - मध्यगे । यत्र तत्र भयं प्राप्तः, सर्वत्र प्रपठेन्नरः ॥
तत्र तत्र भयं तस्य, न भवत्येव निश्चितम् । वाम-पार्श्वे समानीय, शोधितां वर-कामिनीम् ॥
जपं कृत्वा पठेद् यस्तु, तस्य सिद्धिः करे स्थिता ।
इदं कवचमज्ञात्वा, कालीं यो भजते नरः । नैव सिद्धिर्भवेत् तस्य, विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥

॥ महा-काल-मन्त्रोद्धार ॥

१. प्रणवं पूर्वमुच्चार्य, महा-कालाय तत्-परम् । नमः पातु महा-मन्त्रः, सर्व-शास्त्रार्थ-पारगः ॥ अष्टाक्षरो महा - मन्त्रः, सर्वाशा-परि-पूरकः । सर्व-पाप - क्षयं यान्ति, ग्रहणाद् भक्त-वत्सले ! ॥ ॐ महा-कालाय नमः

२. कूर्च-द्वयं महा-काल, प्रसीदेति पद-द्वयम् । लज्जा-युग्मं वह्नि-जाया, राज-राजेश्वरो महान् ॥ मन्त्र-ग्रहण-मात्रेण, भवेत् सत्यं महा-कविः । गद्य-पद्य-मयी वाणी, गङ्गा निर्झरिणी यथा ॥ हूं हूं महा-काल ! प्रसीद प्रसीद ह्रीं ह्रीं स्वाहा

३. शक्ति-बीज-द्वयं दत्वा, कूर्चः स्यात् तदनन्तरम् । महा-काल-पदं दत्वा, माया-बीज-युगं तथा । कूर्चमेकं समुद्धृत्य, महा-मन्त्रो दशाक्षरः ॥ क्लींक्लींहूं महा-काल ह्रींह्रींहूं

४. वेदादि-बीजमादाय, भवानी तदनन्तरम् । महा-कालाय तत्-पश्चात्, कूर्चं दत्त्वा च ठ-द्वयम् ॥ ह्रीङ्कारं पूर्वमुद्धृत्य, वेदादिस्तदनन्तरम् । महा-कालस्यान्त-भागे, स्वाहान्तो मन्त्र उत्तमः ॥ ॐ ह्रीं महा-कालाय हूं स्वाहा ह्रीं ॐ महा-काल स्वाहा

प्रस्तुत-कर्त्ता—**श्री बलराम बली, लखनऊ (उ० प्र०)**

(१) (मध्य प्रदेश) से एक बन्धु लिखते हैं—"...मेरा एक प्रकरण उच्च न्यायालय में विचाराधीन है। दिशा - दर्शन प्रदान करें कि मैं चण्डी के किस मन्त्र का अनुष्ठान करूँ, ताकि सफलता प्राप्त हो।..."

उत्तर : किसी भी **अनुष्ठान** हेतु निर्देश देने के लिए अनुष्ठान-कर्ता से **प्रत्यक्ष परिचय** आवश्यक है। अतः ऐसे बन्धुओं को अपने निकटवर्ती किन्हीं **अनुभवी साधक** से मिलकर, उन्हें **अपनी** समस्या बताकर उनसे **अनुष्ठान** के लिए दिशा - निर्देश लेना चाहिए। **अनुष्ठान** आरम्भ करने से **पूर्व** किन्हीं **ज्योतिषी** से सलाह ले लेनी चाहिए। सामान्यतः न्यायालय में विचाराधीन विषयों के सम्बन्ध में **भगवती श्री बगलामुखी (पीताम्बरा)** की आराधना फल-प्रद होती है। उनकी आराधना के सम्बन्ध में **सांख्यायन तन्त्र** (मूल्य २५ रु०) एवं **श्री वगला सहस्रनाम साधना** (मूल्य ३ रु०) से आवश्यक बातें जान सकते हैं। **श्री बटुकभैरव आपदुद्धारक अष्टोत्तर - शतनाम** का अनुष्ठान भी उक्त विषय में लाभ-प्रद होता है। तत्सम्बन्धी पुस्तक का मूल्य पाँच रुपए मात्र है।

(२) पटना (बिहार) से पं० ताराकान्त मिश्र की जिज्ञासाएँ—

प्रश्न १ : 'सप्तशती के विविध प्रकार' पुस्तक के पृष्ठ 'सात' पर लिखा है कि साधना का स्थान एकान्त, शान्त और पवित्र होना चाहिए किन्तु यदि रहने का स्थान छोटा हो, परिवार बड़ा हो, तो पूजा-स्थान में वैसा एकान्त नहीं हो सकता और न शान्ति ही हो सकती है क्योंकि छोटे बच्चे शान्त नहीं रह सकते। ऐसी दशा में क्या करना चाहिए।

उत्तर : उक्त दशा में पूजा-काल यदि **ब्राह्म-मुहूर्त** और **मध्य रात्रि** में रखें, तो परिवार के सभी जन निद्रावस्था में रहेंगे। एकान्त स्थिति और शान्ति सहज ही उपलब्ध हो जाएँगी। यदि ऐसा करना सम्भव न हो, तो घर के बाहर निकट के किसी देवालय या कुल-वृक्ष, नदी, जलाशय के पास पूजा-स्थान निश्चित कर उसका उपयोग करें। **'साधना-रहस्य'** (मूल्य २५ रु०) में पूजा-स्थान के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण पठनीय है।

प्रश्न २ : स्थान की कमी के कारण **'आसन'** को प्रति-दिन उठाना होगा। इसके लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : आसन को उठाकर लपेटें और किसी सुरक्षित स्थान पर रख दिया करें।

प्रश्न : ३ यदि पाठ बिना किसी कामना के करना हो, तो **सङ्कल्प** करना आवश्यक है या नहीं ? यदि आवश्यक हो, तो उसका रूप क्या होगा।

उत्तर : सङ्कल्प करना आवश्यक है। निष्काम पाठ या जप में **'देवता-प्रीत्यर्थे'** या **'प्रसन्नार्थे'** जैसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

प्रश्न ४ : 'चण्डी' मार्च १९९२, अङ्क १२, पृष्ठ ३६९-३७०। 'साधन-माला' का ९० वाँ सप्तशती-प्रयोग। चारों नव-रात्रों में सोम-वार या शुक्र-वार के दिन साधक बिल्व-पत्रों पर **'श्रीदुर्गा-सप्तशती'** के मध्यम चरित को रक्त-चन्दन से बिल्व-वृक्ष के काँटे से १०८ बार श्रद्धा-पूर्वक लिखे। फिर

भगवती का पञ्चोपचारों द्वारा पूजन कर उस स्थान का 'फल' भगवती को समर्पित करे—ऐसा लिखा है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि **'मध्यम-चरित'** तीन अध्यायों का है, जिनमें श्लोकों की संख्या १५५ है। **विनियोग, ध्यान** अलग हैं। क्या आज के समय में बिल्व - पत्रों पर इतना लिखना सम्भव है ? क्या इसकी कोई अन्य विधि नहीं है ? **'चण्डी' - पाठ** का ऐसा विधान होना चाहिए कि यात्रा के समय में, कार्यालय में, चलते-फिरते, कहीं पर भी किया जा सके। अतः **सरल विधि** सूचित करने का कष्ट करें।

उत्तर : बिल्व-पत्रों पर **मध्यम चरित** लिखने का उक्त प्रयोग वास्तव में एक असाध्य कार्य है। आज के युग में तो असम्भव ही है। फिर भी **'चण्डी'** में उसे इसलिए प्रकाशित किया गया कि लोग जान सकें कि हमारे तपस्वी पूर्वज कितनी कठिन साधना किया करते थे। इस उदाहरण से उन्हें कम-से-कम यह प्रेरणा तो लेनी ही चाहिए कि **जिन कठिन साधनाओं को वे कर सकते हैं,** उनकी उपेक्षा न करें। **सरलता** का लोभ अच्छा नहीं है। संसार में कोई भी कार्य **सरल** नहीं है। कठिनाइयों का सामना करने से ही सफलता मिलती है।

हाँ, असमर्थ या विवश व्यक्तियों के लिए सरल-से-सरल चण्डी-पाठ के विधान भी निर्दिष्ट हैं। **'सप्तशती के विविध प्रकार'** नामक पुस्तक (मूल्य दस रुपए) को ध्यान से पढ़ें, तो ज्ञात होगा कि केवल **'एक श्लोक'** के पाठ से ही सम्पूर्ण **'चण्डी - पाठ'** का फल मिल सकता है और यह पाठ श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक **कहीं भी किसी अवस्था** में निरन्तर किया जा सकता है। निश्चय ही अभीष्ट कामना पूर्ण होगी।

प्रश्न ५ : 'चण्डी' वर्ष ४८, अङ्क ५-६ (अगस्त-सितम्बर, ८९)—**'महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल'** के पृष्ठ ३० पर **'विन्ध्य-वासिनी'** शीर्षक से एक स्तोत्र श्रीमती चन्द्रप्रभा द्विवेदी, प्रयाग द्वारा प्रकाशित कराया गया है। इसी स्तोत्र का प्रकाशन **दीप पब्लिकेशन, हास्पिटल मार्ग, आगरा—३** और **देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली** द्वारा भी किया गया है, किन्तु इन तीनों में अनेक पाठान्तर हैं। पाठान्तरों को कोष्ठक के भीतर लिखा गया है। कृपया स्पष्ट करें कि कौन-सा पाठ शुद्ध है—

निशुम्भ - शुम्भ - गर्जिनी (**गर्जनी**) प्रचण्ड खण्ड (**मुण्ड**) खण्डिनी।
वन (**वने**) रणे (**रण**) प्रकाशिनी भजामि विन्ध्य - वासिनी ॥१
त्रिशूल मुण्ड - धारिणी धरा - विघात - हारिणी (**हारिणीम्**)।
गृहे-गृहे निवासिनी (**निवासिनीं**) भजामि विन्ध्य-वासिनी (**वासिनीम्**) ॥२
दरिद्र - दुःख - हारिणी सतां (**सदा**) विभूति - कारिणी।
वियोग - शोक - हारिणी भजामि विन्ध्य - वासिनी (**वासिनीम्**) ॥३
लसत् - सुलोल (**सुलाल**) लोचनं लतासनं वर (**वरं**) प्रदम्।
कृपालु (**कपाल**) - शूल - धारिणी भजामि विन्ध्य - वासिनी ॥४
करे मुदा गदा - धरा शिवा शिवः प्रदायिनी।
(**कराब्ज - नदा - धरां शिवा शिवं प्रदायिनी**)
वरा वरानन (**वराननां**) शुभा (**शुभां**) भजामि विन्ध्य-वासिनी (**वासिनीम्**) ॥५
ऋषीन्द्र (कपीन्द्र)-जामिनी- प्रदं (**प्रदां**) त्रिधास्य (**त्रिधा स्व**) रूप-धारिणी।
जले थले (**स्थले**) निवासिनी भजामि विन्ध्य - वासिनी (**वासिनीम्**) ॥६
विशिष्ट (**वशिष्ट**)-शिष्ट - कारिणी (**कारिणीं**) विशाल-रूप-धारिणी।
महोदरे विलासिनी (**विलासिनीं**) भजामि विन्ध्य - वासिनी ॥७

पुरन्दरादि-सेविता (**सेवितां**) सुरारि (**पुरादिव**)-वंश-खण्डिनी (**खण्डितां**)।
विशुद्ध-बुद्धि-दायिनी (**कारिणी**) भजामि विन्ध्य-वासिनी (**वासिनीम्**) ॥८

उत्तर : संस्कृतज्ञ पाठकों से निवेदन है कि उक्त स्तोत्र का शुद्ध पाठ यदि किन्हीं के पास उपलब्ध हो, तो प्रकाशनार्थ भेजने की कृपा करेंगे।

'गुरु'-पूर्णिमा के पुनीत अवसर पर ९० वर्षीय श्री अङ्गददास जी, ७२ वर्षीय **तन्त्राचार्य, वैद्य पं० चिरौंजीलाल जी** एवं **साधिका, सामाजिक नेत्री सौ कोकिला पटेल** का अभिनन्दन **'शिवाराध्या पीताम्बरा-धाम', सीहोर (म. प्र.)** के तत्त्वावधान में किया गया। भारतीय संस्कृति के मूर्त्तिमान् स्वरूप महा-त्यागी बाबा श्री अङ्गददास ने **सीहोर** (म० प्र०) में **चौरासी धूनी** तपी है और अपने हाथों से कुआँ आदि खोदकर आश्रम बनाया है। ९० वर्ष की वृद्धावस्था में भी आपके सञ्चालन में सभी धार्मिक कार्यक्रम आज भी विधि-वत् सम्पन्न हो रहे हैं।

वयोवृद्ध **तन्त्राचार्य पं० चिरौंजीलाल जी** के संरक्षण में सीहोर में मन्दिरों एवं **श्री-यन्त्र** की प्राण-प्रतिष्ठा अनेक स्थानों पर हुई है। आपके द्वारा कई यज्ञों का सफल आयोजन भी हुआ है। सीहोर के अधिकांश कर्म-काण्डी आपसे ही प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीमती कोकिला पटेल भगवती बगलामुखी की अनन्य उपासिका हैं। धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में आपकी विशेष रुचि है। महा - मृत्युञ्जय - जप एवं धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय सहयोग हेतु आप प्रख्यात हैं। शिवाराध्या पीताम्बरा-धाम, सीहोर (म. प्र.) के उपर्युक्त **अभिनन्दन-समारोह** में ३०० आस्तिक परिवार एवं नगर के गण्य-मान्य अधिकारी, पत्रकार आदि उपस्थित थे।

एक उद्‌बोधक पत्र

'''**सम्पादक की वाणी** और **चण्डी** के अङ्क मिले। शारदीय नव-रात्रि में हम लोग नौ दिन दुर्गा माता के विविध रूपों की आराधना करती हैं। इस बार हमने **चण्डी** में प्रकाशित विविध स्तोत्रों का उपयोग किया। **सिद्ध - लक्ष्मी स्तोत्र, ये हैं पुनीत-नव-रात्र, सरस्वती स्तोत्र, शारदा माता स्तोत्र, श्री स्वर्णाकर्षण भैरव** स्तोत्र आदि का मैंने और मेरी सहेलियों ने पाठ किया। केवल ध्यान - श्लोक, मूल स्तोत्र और फल-स्तुति पढ़ती थीं। मेरी एक सहेली को **साधन-माला** का **रोग-निवारक स्तोत्र** उपयोगी सिद्ध हुआ है।

आजकल **चण्डी** में बहुत अच्छे और सुन्दर उपयोगी लेख आ रहे हैं। **हिन्दुओं की शक्ति-पूजा, उपवास की सार्थकता, सिन्दूर - धारण करने का अर्थ**—ये सभी कितने उद्‌बोधक हैं! अपनी महिला-शाखा में सदस्य गुरुवार, शुक्रवार और एकादशी के दिन मिलती हैं, तब मैं लेखों को पढ़कर सुनाती हूँ। जिनको हिन्दी मालूम नहीं होती, उन्हें कन्नड़ में बताती हूँ।'

—**सुश्रीरुक्मिणी गिरिमाजी**, मल्लेश्वरम् पश्चिम, बेङ्गलोर (कर्नाटक)

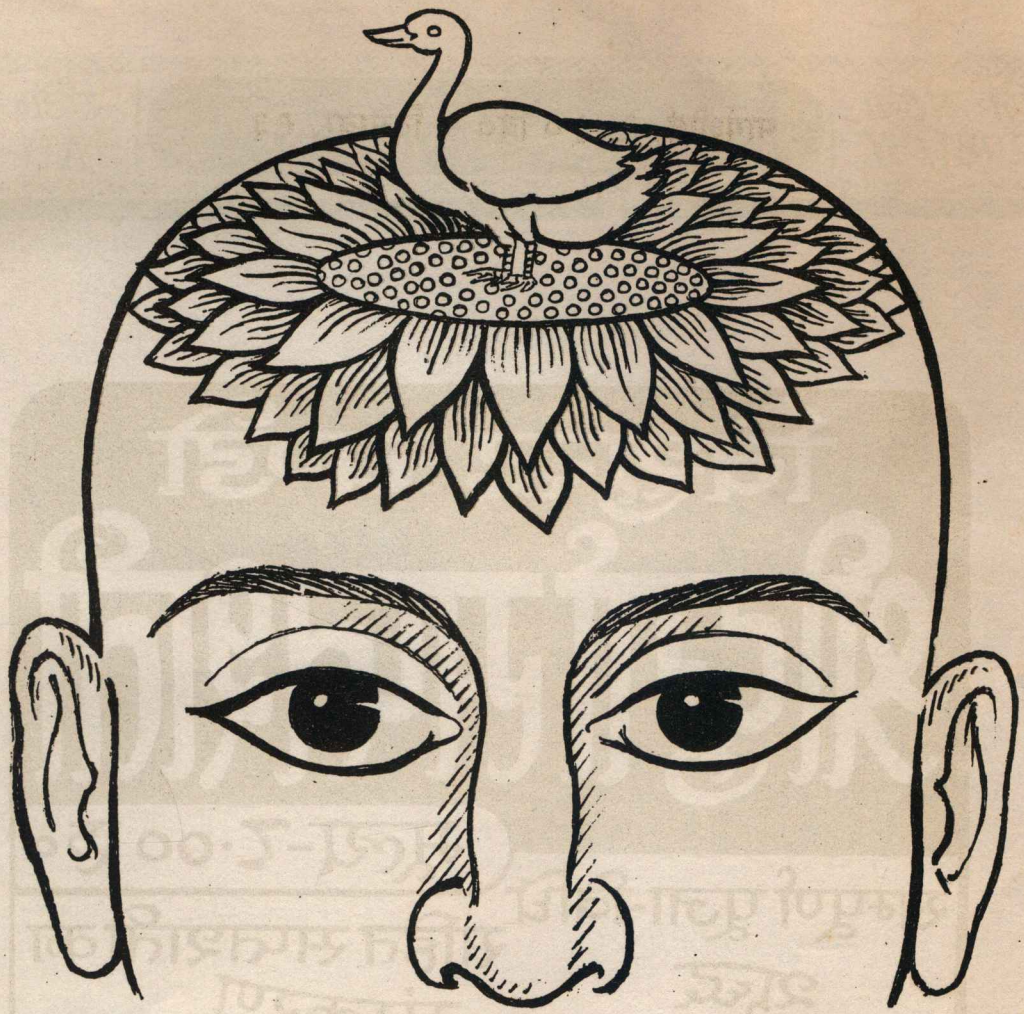

दीक्षा-प्रकाश

'दीक्षा- प्रकाश' नामक पुस्तक में- * दीक्षा, * दीक्षा के भेद, * दीक्षा की आवश्यकता, * दीक्षा- रहस्य, दीक्षा- विवेचन, * दीक्षा- विधि, * संक्षिप्त दीक्षा- विधि, * दीक्षा के सम्बन्ध में ज्योतिष- विज्ञान का मत, क्रम- दीक्षा, * सनातनी दीक्षा- क्रम, * पूर्णाभिषेक- विधान, * दीक्षा अर्थात् 'मुक्ति'- साधना की विवेचना आदि जैसे उल्लेखनीय निबन्ध सरल हिन्दी में पहले- पहल प्रस्तुत हुए हैं। मूल्य २०- ०० रु० मात्र।

रजि० संख्या
32981/57

मार्गशीर्ष, २०५० वि० - दिसम्बर, ६३

रजि० संख्या
AD~96

विशुद्ध चण्डी
श्रीदुर्गासप्तशती

मूल्य-८·०० रु०

सम्पूर्ण पूजा-विधि सहित सप्तशती का शुद्ध संस्करण

चण्डी कार्यालय
इलाहाबाद-२११००६

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा
चण्डी - कार्यालय, पराणी प्रेस, प्रयाग २११००६